प्रकाशक
ज्ञानलोक
इलाहाबाद-२

मूल्य १·७५ रु०
तृतीय संस्करण ३०००
३ म १०६७

मुद्रक
रामबाबू अग्रवाल
ज्ञानोदय प्रेस, कटरा,
इलाहाबाद-२

# अनुक्रम

# भूमिका

## हिन्दी-कहानी साहित्य

ऐसे तो काव्य, नाटक, चंपू, उपन्यास आदि समस्त साहित्य विधाओं का मूल आधार कोई न कोई कहानी ही होती है, और विश्व-साहित्य के सभी प्राचीन ग्रन्थ किसी न किसी कहानी के ही रूप में अवतरित हुए हैं तथापि आधुनिक युग में कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण, छोटी कहानी, लघुकथा, गल्प, आख्यायिका अथवा कहानी एक स्वतंत्र विधा (साहित्य-रूप) मान ली गई है। अतः कहानी या आधुनिक कहानी की विशेषताओं को समझना जरूरी हो गया है।

**कहानी का आदि रूप**

आज कहानी ही सबसे अधिक व्यापक और लोकप्रिय हो रही है। जो स्थान कभी साहित्य में काव्य को प्राप्त था, और उसके बाद नाटक और उपन्यास को प्राप्त हुआ था, आज वह स्थान संसार भर के साहित्य में कहानी को प्राप्त है। इसका मुख्य कारण यही है कि आज लोगों के व्यस्त जीवन में समय का अभाव है। और दूसरा कारण यह भी है कि कहानी ने आज कविता, नाटक और उपन्यास सभी का रस अपने में निचोड़ कर अपने को अत्यन्त रसमय और आनन्दप्रद बना लिया है।

कहानियों का आदि स्रोत भारतवर्ष के जातक, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ही हैं। फारस, अरब और यूनान से लेकर समस्त योरप में थोड़े-

बहुत परिवर्तन के साथ हमारी ये पुरानी कहानियाँ प्रचलित हो गई थीं। फारस में हमारा पंचतंत्र ही "कलीला दमना" बन गया था। यूनान में हमारे "हितोपदेश" ने ही "ईसप" की उपदेश कथाओं का नया कलेवर धारण किया था। हमारी यह मान्यता है कि "ईसप" कोई व्यक्ति नहीं था वरन् "उपदेश" शब्द ही "उवेश" होकर यूनानी भाषा का "उसेव" या "ईसोप" हुआ है। भारतीय कहानी की इस गौरवपूर्ण व्यापकता की जानकारी रखने वाले हम यह मानने को तैयार नहीं हो सकते कि हमारी आधुनिक कहानी योरप या अमरीका की देन है।

गौतम की करुणा का प्रसार, शालिवाहन तथा विक्रमादित्य के शौर्य का बखान, अशोक और हर्ष के त्याग, अलक्षेन्द्र की विजय-यात्रायें, ईरान और यूनान के युद्ध, शार्लमन और किंग आर्थर के पुरुषार्थ आदि ऐसे विश्व-व्यापी विषय हुए जिन्होंने भिन्न-भिन्न शताब्दियों में संसार के विभिन्न भागों के मानव को अनेक गाथाओं और शाकाओं (सागाओं) के निर्माण का अवसर दिया था। नये संसार के रूप में अमरीका की खोज भी संसार की एक ऐसी ही प्रशस्त घटना थी। जीवन की कठोरताओं से पीड़ित और ऊबे हुए अनेक योरपीयों को वहाँ बहुत दिनों तक अपना नया जीवन आरम्भ करने के लिए स्थान और आश्रय मिलता रहा। ऐसे ही लोग जब वहाँ जुट गये तब उनकी आत्मा की तड़पन ने उस नवीन वातावरण में उनकी कोमलतम भावनाओं की अभिव्यंजना के लिए एक नई "टेकनीक" और नई साहित्य-विधा का सहारा लिया जो आधुनिक कहानी के रूप में विख्यात हुई। भारत में अंग्रेजों के आगमन से एक नये प्रकार की शासन-पद्धति की स्थापना एवं वैज्ञानिक सुविधाओं की उपलब्धि के कारण हमारे सामाजिक जीवन में विप्लवकारी परिवर्तनों का उपस्थित होना भी एक ऐसी ही असाधारण घटना थी जिसके परिणामस्वरूप हमारे साहित्य में भी प्रथम सुधारवादी और फिर क्रमशः

क्रान्तिकारी और राष्ट्रवादी भावनायें उद्वेलित हुईं। यहाँ भी इस नवीन भावधारा का प्रवाह आधुनिक कहानी के रूप में ही हुआ। उस नये समाज और नये जीवन की नई व्याख्या और नई समीक्षा के लिये नई टेकनीक अनिवार्य हुई और उसीने पुरानी कहानी से आधुनिक कहानी को भिन्न रूप दिया। यह नई समीक्षा और व्याख्या अमरीकी या यूरोपीय दृष्टिकोण से न होकर भारतीय दृष्टिकोण से हुई थी। अतः यह कहना कि हिन्दी की आधुनिक कहानी के विकास की प्रेरणा आधुनिक पाश्चात्य कहानी से प्राप्त हुई सत्य नहीं है।

विश्व की अनेक प्राचीन एवं आधुनिक भाषाओं की तुलना में काल-क्रम के अनुसार हिन्दी का अभ्युदय लगभग दसवीं शताब्दी की बात है।

**हिन्दी-कहानी का प्रारंभिक रूप**

देखा जाता है कि प्रत्येक भाषा के साहित्य का इतिहास पद्यमय रचनाओं से आरंभ होता है। हिन्दी-भाषा के साहित्य का इतिहास भी इस परंपरा का अपवाद नहीं है। उसकी सभी प्रारंभिक रचनाएँ पद्यों में ही मिलती हैं और वे प्रायः किसी-न-किसी कथा पर ही आधारित हैं। मुसलमानों के आक्रमण के साथ राजपूतों की जिन वीर-गाथाओं का सूत्रपात हुआ और उनके आधार पर जो रचनाएँ की गईं उनमें 'खुमान रासो', 'पृथ्वीराज रासो', 'आल्हखंड' आदि प्रमुख हैं। इनमें इति-हास और कल्पना के आधार पर अनेक कथाएँ मिलती हैं। अवधी में सूफी-कवियों के प्रेमाख्यान भी हिन्दी-कथा-साहित्य का आदि रूप प्रस्तुत करते हैं। सूर, तुलसी तथा अन्य भक्त-कवियों की रचनाएँ भी कृष्ण और राम की लीला-कथाओं में भरी पड़ी हैं। हिन्दी के पद्य-साहित्य की भाँति उसके गद्य-साहित्य में भी कथा-साहित्य की प्रचुरता है। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता', जटमल-कृत 'गोरा बादल की कथा' सुरति मिश्र-कृत 'बैताल पचीसी' आदि ग्रंथ उस समय के

कथा-साहित्य का नमूना पेश करते हैं जब खड़ीबोली का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था।

खड़ीबोली का अभ्युदय होने पर सैयद इंशाअल्ला खाँ (सन् १७६४-१८१७) ने गद्य में 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की, लल्लू लाल (सन् १७६३-१८२५) ने 'प्रेम-सागर' (सन् १८०३) और सदल मिश्र (सन् १७७४-१८४९) ने 'नासिकेतोपाख्यान' (सन् १८०३) लिखा। इनके अतिरिक्त हिन्दी कथा-साहित्य के विकास में तत्कालीन ईसाई धर्म-प्रचारकों का भी काफी हाथ रहा। उन्होंने हमारे पौराणिक आख्यानों के आधार पर अपनी धर्म-भावना के अनुरूप अनेक रचनाएँ कीं। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द (सन् १८२३-१८९५) ने 'राजा भोज का सपना' और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सन् १८५०-८४) ने 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' लिखकर हिन्दी कथा-साहित्य को विकास के पथ पर अग्रसर किया।

**हिन्दी का कहानी-साहित्य**

हिन्दी में कहानी-साहित्य का आधुनिक रूप द्विवेदी-युग (सन् १८९३-१९१८) से आरंभ होता है। यह हिन्दी-भाषा के परिमार्जन एवं उसके साहित्य के विविध रूपों के विकास का युग था। इस युग में अनेक ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यासों की रचना के साथ-साथ कहानी-साहित्य को भी प्रोत्साहन मिला। इस युग के पूर्व जो कहानियाँ लिखी गई थीं, उनमें इतिवृत्त की ही प्रमुखता थी और वह इतिवृत्त भी ऐसा था जिसमें कुतूहल की अधिकता के कारण जीवन के गंभीर प्रश्नों का समावेश नहीं हो पाया था। योरप की विभिन्न भाषाओं के साहित्य में उस समय जैसी जीवन-स्पर्शी कहानियाँ प्रकाशित हो रही थीं, उनके प्रभाव से वैसी कहानियाँ सर्वप्रथम बंग-साहित्य में 'गल्प' के नाम से प्रकाशित हुईं। इन 'गल्पों' से हिन्दी के तत्कालीन लेखकों को प्रेरणा मिली और उन्होंने भी उनकी कला को अपनाकर अपनी स्वतंत्र रचनाएँ प्रस्तुत कीं। सन् १९००

में सर्वप्रथम किशोरीलाल गोस्वामी (सन् १८६५-१९३२) ने प्रयाग से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सरस्वती' में 'इन्दुमती' शीर्षक कहानी लिखी। इसके पश्चात् बँगला से अनूदित अथवा रूपांतरित कई कहानियाँ उसमें प्रकाशित हुईं। मौलिक कहानियों में किशोरीलाल गोस्वामी-कृत 'गुलबहार' (सन् १९०२), वृन्दावनलाल वर्मा-कृत 'राखीबन्द भाई' (सन् १९०३), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' (सन् १९०३) और बंग-महिला-कृत 'दुलाईवाली' (सन् १९०७) शीर्षक कहानियाँ अधिक लोकप्रिय हुईं। जयशंकर प्रसाद-कृत 'ग्राम' (सन् १९११) नामक कहानी 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। इस कहानी के प्रकाशन से हिन्दी कहानी-कला का नवीन रूप सामने आया। सन् १९१२ में विश्वम्भरनाथ जिज्जा की 'परदेशी', सन् १९१३ में राधिकारमणसिंह की 'कानों में कँगना' और विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'रक्षा बंधन', सन् १९१५ में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' और सन् १९१६ में प्रेमचन्द की 'पंचपरमेश्वर' शीर्षक कहानियाँ प्रकाशित हुईं। उस समय कहानी-साहित्य के प्रसार एवं उसकी कला के विकास में 'सरस्वती' तथा 'इन्दु' ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योग दिया। ज्वालादत्त शर्मा और चतुरसेन शास्त्री ने भी इसी के आस-पास कहानी लिखना आरम्भ किया। इन कहानीकारों के अतिरिक्त चण्डीप्रसाद 'हृदयेश', बद्रीनाथ भट्ट 'सुदर्शन', गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, जी० पी० श्रीवास्तव आदि ने भी कहानी-साहित्य के विकास में विशेष योग दिया। इन कहानीकारों ने अपनी-अपनी रचनाओं में जीवन की विविध समस्याओं को अपनाया और चरित्र-प्रधान कहानियाँ लिखीं।

सन् १९२८ में जैनेन्द्रकुमार ने हिन्दी-कहानी के क्षेत्र में प्रवेश किया। उन्होंने अपनी कहानियों को नई भाषा, नये भाव और नई मनोवैज्ञानिक शैली के रूप में एक सर्वथा नवीन दिशा की ओर उन्मुख किया। 'फाँसी', 'खेल' आदि उनकी कहानियाँ अधिक लोक-प्रिय हुईं। रायकृष्णदास, भगवती-

प्रसाद वाजपेयी, अन्नपूर्णानन्द, बेचन शर्मा 'उग्र', भगवतीचरण वर्मा, विनोद शंकर व्यास, प्रफुल्लचन्द्र ओझा, ऊषादेवी मित्रा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', यशपाल, रामप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी', इलाचन्द जोशी, राधाकृष्ण, रांगेय राघव, विष्णु प्रभाकर, श्रीराम शर्मा, महादेवी वर्मा, शिवरानी, प्रेमचन्द, सत्यवती मल्लिक, कमलादेवी चौधरी, सुभद्राकुमारी चौहान, कृष्णदेव प्रसाद गौड़, अज्ञेय आदि कहानीकारों ने हिन्दी के आधुनिक कहानी-साहित्य के संवर्धन और विकास में जो योग दिया है वह प्रत्येक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नई कहानी के उन्नयन में अमरकान्त, हरिशंकर परसाई, ओमप्रकाश श्रीवास्तव, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, शानी, मन्नू भंडारी आदि का योग स्मरणीय है।

**आधुनिक कहानी की विशेषता**

आधुनिक कहानी पुरानी कहानी से कई बातों में भिन्न है। पुरानी कहानियों में रस घटना-चमत्कार के द्वारा उत्पन्न होता था। उस समय कहानी का प्रमुख उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन और कहानी द्वारा उपदेश देना ही होता था। अतः कहानी में एक छत्र कल्पना का राज्य था। अद्भुत, विस्मयपूर्ण और अलौकिक घटनाओं का विधान कहानीकार का प्रबल पुरुषार्थ माना जाता था। वास्तव में वे कहानियाँ जिन्हें हम आज 'पुरानी कहानियाँ' कहते हैं, कहानी से विकास-क्रम में उसकी शैशवावस्था का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। शैशव में सारा जगत भोला, सुहावना तथा परियों के कोमल और रंगीन परों पर उड़ता हुआ प्रतीत होता है। यही कारण है कि पुरानी कहानियों में स्वाभाविकता-अस्वाभाविकता का कोई प्रश्न नहीं था। उस समय कहानियों के नायक सुर-नर-नाग-असुर-मुनि-किन्नर ही नहीं पशु-पक्षी तक हुआ करते थे। कहानियों का काल भी प्रायः अतीत ही हुआ करता था जैसे "बहुत पुराने युग की बात है", या "एक राजा था" इत्यादि। इसका भी विशेष कारण था। इन कहानियों

के श्रोता और वक्ता दोनों ही को अतीत सर्वाधिक आकर्षक और प्रेरणा-दायक प्रतीत होता था। उस समय के समाज की मनुष्य की अपरिमित शक्ति में एवं मानवेतर शक्तियों की अलौकिकता को पहचानने और सराहने की मानव-शक्ति में, अटूट आस्था भी थी। किन्तु आधुनिक कहानी की दृष्टि अतीत में न जाकर इस वैज्ञानिक युग के विराट् वर्तमान और कुछ-कुछ भविष्य में ही उलझी हुई है। आधुनिक कहानी की जबान पर अतीत की शीरीनी का नहीं वरन् वर्तमान की—बीसवीं शताब्दी की—कटुता का स्वाद है। यद्यपि जैसे शरीर में मेरु-दण्ड वैसे ही कहानी में कथा-वस्तु (कथानक) आज भी महत्त्व रखता है, तथापि पुरानी कहानी के समान आधुनिक कहानी का प्राण, कथा या प्लॉट का सौन्दर्य नहीं है। आधुनिक कहानीकार का ध्यान घटना-चमत्कार के विधान की ओर मुख्य रूप से नहीं रहता। पुरानी कहानी की भाँति आधुनिक कहानी में उपदेश या धर्म अथवा नैतिकता सम्बन्धी प्रचार भी नहीं होता। यह बात नहीं कि आधुनिक कहानी का कोई खास उद्देश्य ही नहीं होता। आधुनिक कहानी का सारा मन्तव्य संवेदना के रूप में प्रकट होता है। आज की कहानी का रचयिता पुराने कहानीकार के समान कथानक को घटना-चमत्कार से अलंकृत न करके, चरित्रों के विकास, मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण एवं भावों से उत्थान-पतन का ही अपना मुख्य ध्येय बनाता है। एक बात और। पुरानी कहानी के पात्र प्रायः देवता, राजा, ऋषि आदि आदर्श प्राणी ही होते थे, किन्तु आधुनिक कहानियों के मानव प्रायः सामान्य जन होते हैं। इसी कारण इनके कार्य अलौकिक न होकर लौकिक ही होते हैं।

आधुनिक कहानी की सबसे बड़ी विशेषता उसकी 'एकतथ्यता' है। प्रेमचन्द की "क्षमा" कहानी में जैसी एकतथ्यता दृष्टिगोचर होती है, वैसी उनकी "बड़े भाई साहेब" या उनकी ही अनेक अन्य कहानियों में नहीं है। मानव अपने समय और निष्ठा के क्षणों में, अनेक विषम परि-

स्थितियों से घिरा हुआ होने पर भी अत्यन्त सुदृढ़ और बलवान होता है, अथवा मानवता के प्रति सद्भावना से प्रेरित निष्ठा को संसार को क्रूर से क्रूर शक्ति भी डिगा नहीं सकती, केवल इसी एक तथ्य की स्थापना में "क्षमा" कहानी आदि से अन्त तक व्यस्त है। किन्तु "बड़े भाई साहेब" में जीवन की अनेक चर्चाओं का गुल-गपाड़ा है। उदाहरणार्थ किशोर वय के विद्यार्थियों की मानसिक अस्थिरता का विवेचन, आधुनिक शिक्षा प्रणाली के दोष में खेल-कूद का स्थान, अपने से बड़ों के प्रति श्रद्धा-भक्ति रहने का विद्यार्थी-जीवन में महत्त्व आदि ऐसे जीवन के अनेक तथ्य हैं जिनमें से प्रत्येक एक-एक कहानी का आधार बनाए जा सकते थे।

यों तो प्रत्येक मनुष्य के लिए उसके जन्म से लेकर मरण तक के क्रिया-कलाप, उसकी एकमात्र जीवन-समष्टि है, फिर भी प्रत्येक प्राणी के एक दिन में ही उसके लिए कितनी ही लघु समष्टियाँ हो सकती हैं। आधुनिक कहानीकार जीवन की छोटी से छोटी घटना को एक समष्टि के रूप में आँकता और अपने तथा दूसरों के जीवन में उस एक घटना की पूर्णता में निहित मर्म या प्रभाव को स्पष्ट कर उसके प्रति एक अपूर्व संवेदना जागृत करता है। लघुतम समष्टियाँ जीवन में जहाँ पूर्णता प्राप्त नहीं कर पातीं वहाँ कहानीकार अपनी कला में ही उन्हें वह पूर्णता प्रदान कर नव-निर्माण की छटा को प्रदर्शित करता है। पूर्णता का यह दान उसका अपना दृष्टिकोण या जीवन-दर्शन ही है। उसका जीवन-दर्शन हमको और आपको पसन्द हो या न हो, कहानीकार का अपने "कलाकार के सत्य दर्शन" या अपने "इल्यूजन" अथवा "भ्रान्ति" का अपनी भाषा-शैली द्वारा सार्थक चित्रण ही उसका पूर्ण साफल्य है। इस प्रकार आधुनिक कहानी वस्तु प्रधान न होकर व्यक्ति प्रधान है, बाह्य वस्तु निरूपणी न होकर स्वानुभूति निरूपणी है। यह एक प्रकार का काव्य ही है। आधुनिक कहानी की सबसे बड़ी सफलता उसके अन्त में है।

आधुनिक कहानी की तीसरी विशेषता वातावरण का चित्रण है। प्रत्येक भूमि-भाग की मि ी की एक खास महक होती है, और उस मिट्टी में पनपी हुई वनस्पतियों के पत्ते-पत्त और फूल-फल में एक विशेष गन्ध होती है। वहाँ के प्राणियों, विशेष रूप से, मानव-प्राणियों में भी एक विशेष मनः स्थिति या गन्ध होती है। यह गन्ध उस देश के निवासीयों की भाषा, आचार-विचार तथा मानसिकता में प्रतिबिम्बित होती है। इस प्रकार की "माटी की महक" और "मानुस की गन्ध" जिस कहानी-लेखक के कलम से उसकी कहानी में फूट पड़ती है वही सफल आधुनिक कहानीकार होता है। कहानी समाप्त करते-करते पाठक के मन में एक खास संवेदना उत्पन्न न हुई तो मान लेना पड़ेगा कि कहानी-लेखक अभी अपनी कला में अपरिपक्व ही रह गया है।

संक्षेप में मानव के सजीव अस्तित्व के लिए जो महत्व रीढ़ की हड्डी रक्त-मांस और प्राण तथा आत्मा का है, वही महत्व आधुनिक कहानी में कथा-वस्तु, वातावरण, एकतथ्यता और कहानी के मर्म या संवेदना में है।

कुछ लोग निर्माण की दृष्टि से (और अध्यापन की दृष्टि से भी) अच्छी कहानी के निम्न आठ तत्वों की कल्पना करते हैं :—१. शीर्षक, २. कथा-वस्तु, ३. चरित्र-चित्रण, ४. सम्भाषण, ५. वातावरण, ६. भाषा-शैली, ७. उद्देश्य और ८. अन्त।

**आधुनिक कहानी का रूप-विधान**

१. **शीर्षक**—कहानी का शीर्षक सार्थक होना चाहिए। कलाकार के जिस दृष्टिकोण का कहानी में चित्रण रहता है उसका कुछ अस्पष्ट आभास कहानी के शीर्षक में मिल जाना चाहिये। लेकिन अगर उससे कहानी का रहस्य ही खुल जाता हो तो वह शीर्षक कलापूर्ण नहीं माना जा सकता।

२. **कथा-वस्तु**—लेखक जब किसी घटना, भाव या व्यक्ति से प्रभावित होता है तो अपने प्रभाव को व्यक्त करने के उद्देश्य से वह थोड़े से कार्यों

का चयन कर एक अर्थयुक्त परिस्थिति की कल्पना करता है। वही सार्थक परिस्थिति कथा-वस्तु बनती है। कथा-वस्तु बरगद के उस छोटे से बीज के समान है जिसमें विशाल वृक्ष के सभी आवश्यक तत्व छिपे हैं। शरीर के भीतर हड्डियों की ठठरी छिपी है और उसी ठठरी पर सारा शरीर आधृत है। आख्यान-साहित्य में कथा-वस्तु का भी ऐसा ही स्थान है। कहानी की कथा-वस्तु छोटी होती है, किन्तु खूब कसी हुई। कथा-वस्तु पाठक की उत्सुकता को निर्धारित दिशा में आगे बढ़ाकर अन्तिम उद्देश्य तक पहुँचाने का साधन है। उसमें क्रमबद्धता तथा मौलिकता के साथ-साथ मनोरंजन का गुण आवश्यक है। कहानी की कथा-वस्तु सरल होनी चाहिये, जटिल नहीं। उसमें एक से अधिक कथाओं का संगुम्फन नहीं होना चाहिये। मूल-प्रेरक भाव से नियन्त्रित होने के कारण तथा उद्देश्य और प्रभाव की एक-निष्ठता के कारण ही कथा-वस्तु में सरलता आती है। कहानी के अन्त में ही मूल-प्रेरक भाव की व्यंजना होती है। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि कहानी का अन्त ही कथा का मार्ग निर्धारित करता है।

३. **चरित्र-चित्रण**—किसी भी कलात्मक रचना के जो पात्र हमारे सामने आते हैं उन्हें हम भीतर-बाहर से अच्छी तरह पहचान लें इसी को चरित्र-चित्रण कहते हैं। चरित्र-चित्रण कहानी (और प्रमुखतः उपन्यास) का एक बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व है। कल्पना कीजिये कि भोपाल के किसी चौराहे पर आपके देखते-देखते एक कान्सटेबल अपनी जान पर खेलकर एक लड़के को मोटर के नीचे दब जाने से बचा लेता है; और इस घटना से प्रभावित होकर आप एक कहानी लिखना चाहते हैं। आप यदि अपनी कहानी में उस कान्सटेबल का कुछ ऐसा विशेष चित्रण कर सकें कि उसे पढ़कर मैं दूसरे दिन एक ही पोशाक में भिन्न-भिन्न चौराहे पर खड़े भोपाल के पचास कान्सटेबलों में उस कान्सटेबल को पहचान सकूँ तो

समझिये कि आप चरित्र-चित्रण की अति दुस्तर कला में एकदम पारंगत हो गये। इस सृष्टि के जड़-चेतन सभी पदार्थों में कुछ न कुछ भिन्नता होती है। मानव प्राणी की बनावट में ही नहीं, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े सभी की बनावट में कुछ न कुछ अलगाव होता है। बोली-भाषा भी एक की दूसरे से भिन्न होती है। देशगत, जातिगत, व्यवसायगत और व्यक्तिगत विभिन्नता के ही कारण आदमी झट पहचान में आ जाता है। कलाकार भी अपने चित्रण में विधाता की तरह ही जागरूक होता है। उसका हर एक पात्र अपनी निजी विशेषताओं से युक्त होता है, और एक दूसरे से अलग खड़ा पाया जाता है। चरित्र-चित्रण वह आईना है जो 'एक्स-रे' की तरह भीतर का भी फोटो ले लेता है। पाठक के मन में वह सूरत इस तरह घर करके बैठ जाती है कि भुलाये नहीं भूलती।

४. **सम्भाषण**—सम्भाषण या कथोपकथन या सम्वाद द्वारा चरित्र-चित्रण में क्षिप्रता और स्वाभाविकता आती है। इससे चित्र में सजीवता भी आ जाती है। जो कहानी बातचीत के झटके के द्वारा शुरू होती है वह एक-एक कदम में ही कोसों की दूरी नाप लेती है। कथोपकथन का प्रत्येक शब्द सार्थक और सोद्देश्य होना चाहिये। कथोपकथन इतने अधिक चटकीले भी न हो जायँ कि वे पाठक का ध्यान अपनी मुट्ठी में बन्द कर उसे अटका लें, और कथा-प्रवाह में रुकावट पैदा कर दें। प्रेमचन्द के शब्दों में निर्जीव सम्भाषण वे होते हैं जिनमें दो व्यक्ति नहीं, सिर्फ दो मुँह बोलते हैं। इसका तात्पर्य यही है कि कहानी का सम्वाद व्यक्ति और परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिये। हर आदमी का बातचीत करने का, चलने का, उठने का, बैठने का अपना एक ढंग होता है। पहनावे की भी अपने देश की एक खास परम्परा रही है जिससे आदमी कहाँ का है और क्या व्यवसाय करता है यह पता आसानी से चलता रहा है। व्यक्ति की इसी विशिष्टता की

पहचान सम्भाषण को स्वाभाविकता प्रदान करती है। उचित सम्भाषण पात्रों के चरित्र-निर्माण में भी सहायक होता है।

५. **वातावरण**—वह देशकाल और परिस्थिति जो कहानी के पात्र के जीवन पर प्रकाश डालने वाली होती है, कहानी का वातावरण कहलाती है। इस वातावरण की स्वाभाविक सृष्टि पर कहानी की सफलता बहुत कुछ अवलम्बित रहती है। वातावरण को पृष्ठभूमि भी कहते हैं। घटनाएँ ठोकर मार-मारकर जीवन-रथ को आगे बढ़ाती हैं। पर घटनाएँ शून्य में तो नहीं घटतीं। उनके लिए आधार तो चाहिये ही। जल-थल-आकाश जिन परिस्थितियों के बीच घटनायें घटती हैं उनका वर्णन वातावरण कहलाता है। कहानी लेखक को थोड़े शब्दों में, थोड़े स्थान के भीतर, संकेत से देश-काल की विशेषतायें व्यक्त करते चलना चाहिये। अलग से उनका विस्तृत वर्णन नहीं करना चाहिये। बीच-बीच में संक्षिप्त वर्णनों के द्वारा और अधिकतर पात्रों के सम्भाषण और उनके क्रिया-कलाप द्वारा समय, स्थान और परिस्थिति का परोक्ष रूप से पता देते रहना चाहिये। किन्तु वातावरण कभी ऐसा न हो जो स्वतन्त्र रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट करके कथा की गतिशीलता में व्याघात उत्पन्न कर दे। प्रसाद की कहानी "आकाशदीप" में वातावरण का चित्रण बहुत कुछ इसी कोटि का है।

६. **भाषा-शैली**—प्रत्येक व्यक्ति का शब्दकोष तथा शब्दोच्चारण का स्वर दूसरे से भिन्न होता है। कहने के ढंग का ही दूसरा नाम शैली है। शैली ही कला की आत्मा है। जिस तरह सारे शरीर में प्राण का संचार है, परन्तु वह एक जगह निकाल कर दिखाया नहीं जा सकता, और जिस तरह गुलाब के फूल को चीर-फाड़कर उसकी खूशबू या खूबसूरती दिखाई नहीं जा सकती, उसी प्रकार शैली का स्वरूप भी अलग से दिखाया नहीं जा सकता। शैली कलाकार की उद्दीप्त प्रतिभा का कौशल है। वह उसके शब्द-शब्द में व्याप्त है। शैली ही अलंकार है। शैली ही रस परिपाक

# १. छोटा जादूगर

## [जयशंकर प्रसाद]

प्रसाद जी प्रमुख रूप से एक अत्यन्त भावुक कवि थे, अतः उनकी कहानियाँ भी प्रायः भावनाप्रधान हैं। किन्तु 'मधुआ' और 'छोटा जादूगर' दोनों ही प्रसाद जी की ऐसी कहानियाँ हैं जिनका निर्माण यथार्थ के ठोस धरातल पर हुआ है। इस दृष्टि से "छोटा जादूगर" कहानी का हिन्दी कहानी-साहित्य में एक विशेष स्थान है। छोटे जादूगर के रूप में दिखलाई पड़ जाने वाले बालक को लेखक ने अमर सजीवता और सत्यता प्रदान की है। इस बालक के मोहक व्यक्तित्व के प्रति हमारी सहानुभूति, वेदना तथा मङ्गल-कामना सहज ही जाग्रत हो उठती है। लेखक के उन्मुक्त स्वभाव तथा मानव के प्रति उसके हृदय की अगाध करुणा का परिचय भी हमें इस कहानी से प्राप्त होता है।

बन्दीगृह में पड़े हुए किसी देशभक्त के तेरह-चौदह वर्षीय बेटे की यह करुण कहानी है जिसको जीवन की कठिनाइयों ने छोटी उम्र में ही अपनी जीविका उपार्जन करने के लिए विवश कर दिया है। देशभक्त पिता का वह स्वाभिमानी पुत्र 'छोटा जादूगर' बनकर अपना और अपनी बीमार माँ का भरण-पोषण करता है। उसमें आत्मसम्मान का भाव इतना प्रबल है कि माता मृत्युशय्या पर पड़ी है फिर भी वह किसी से कुछ याचना करना उचित नहीं समझता, वरन् अपना 'खेल' दिखाकर ही माता के दवा-दारू के लिए कुछ पैदा कर लेना चाहता है। अंतिम दृश्य तो बड़ा दी हृदय-द्रावक है। माता की याद करके अपनी भीषण बेबसी में भीतर से रोता हुआ भी वह बालक जिस उत्साह के साथ स्वयं हँसने का प्रयास करता हुआ दर्शकों का अंत तक मनोरंजन करता जाता है उसे देखकर उस बालक के

प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। साथ ही यह भी विश्वास होता है, आगे चलकर वह बालक अवश्य एक संयमी, साहसी तथा उच्च विचारों और कार्यों वाला मनुष्य हुआ होगा। "गरीब से गरीब लड़का भी यदि आत्मसम्मान तथा स्वावलम्बन की आराधना कर सके तो जीवन में महान् बन सकता है" यही महामंत्र इस बालक ने प्राप्त कर लिया था।

वातावरण और विषय के सर्वथा अनुकूल इस कहानी की भाषा-शैली प्रसाद जी की सार्थक उत्कृष्ट कलात्मक का एक ज्वलन्त उदाहरण है।



कार्निवल के मैदान में बिजली जगमगा रही थी। हंसी और विनोद का कलनाद गूँज रहा था। मैं खड़ा था उस छोटे फुहारे के पास, जहाँ एक लड़का चुपचाप शरबत पीनेवालों को देख रहा था। उसके गले में फटे कुरते के ऊपर से एक मोटी-सी सूत की रस्सी पड़ी थी और जेब में कुछ ताश के पत्ते थे। उसके मुँह पर गम्भीर विषाद के साथ धैर्य की रेखा थी। मैं उसकी ओर न जाने क्यों आकर्षित हुआ। उसके अभाव में भी सम्पूर्णता थी। मैंने पूछा—क्यों जी तुमने इसमें क्या देखा?

'मैंने सब देखा है। यहाँ चूड़ी फेंकते हैं। खिलौनों पर निशाना लगाते हैं। तीर से नम्बर छेदते हैं। मुझे तो खिलौनों पर निशाना लगाना अच्छा मालूम हुआ। जादूगर तो बिलकुल निकम्मा है। उससे अच्छा तो ताश का खेल मैं ही दिखा सकता हूँ।'—उसने बड़े जोश से कहा। उसकी वाणी में कहीं रुकावट न थी।

मैंने पूछा—और उस परदे में क्या है? वहाँ तुम गये थे?

'नहीं, वहाँ मैं नहीं जा सका। टिकट लगता है।'

मैंने कहा—तो चलो मैं वहाँ पर तुमको लिवा चलूँ। मैंने मन-ही-मन कहा—'भाई! आज के तुम्हीं मित्र रहे।'

उसने कहा—वहाँ जाकर क्या कीजिएगा? चलिए निशाना लगाया जाय।

मैंने उससे सहमत होकर कहा—तो फिर चलो पहले शरबत पी लिया जाय। उसने हाँ के बहाने सिर हिला दिया।

मनुष्यों की भीड़ से जाड़े की संध्या भी वहाँ गर्म हो रही थी। हम दोनों शरबत पीकर निशाना लगाने चले। राह में ही उससे पूछा—तुम्हारे और कौन है?

'माँ और बाबू जी।'

'उन्होंने तुमको यहाँ आने के लिए मना नहीं किया?'

'बाबू जी जेल में हैं।'

'क्यों?'

'देश के लिए।'—वह गर्व से बोला।

'और तुम्हारी माँ?'

'वह बीमार हैं।'

'और तुम तमाशा देख रहे हो?'

उसके मुँह पर तिरस्कार की हँसी फूट पड़ी। उसने कहा—'तमाशा देखने नहीं, दिखाने निकला हूँ। कुछ पैसे ले जाऊँगा, तो माँ को पथ्य दूँगा। मुझे शरबत न पिलाकर आपने मेरा खेल देखकर मुझे कुछ दे दिया होता, तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती!'

मैं आश्चर्य से उस तेरह-चौदह वर्ष के लड़के को देखने लगा।

'हाँ, मैं सच कहता हूँ बाबू जी! माँ जी बीमार हैं; इसलिए मैं नहीं गया।'

'कहाँ'

'जेल में! जब कुछ लोग खेल-तमाशा देखते ही हैं, तो मैं क्यों न दिखाकर माँ की दवा करूँ और अपना भी पेट भरूँ।'

मैंने दीर्घ निःश्वास लिया। चारों ओर बिजली के लट्टू नाच रहे थे। मन व्यग्र हो उठा। मैंने उससे कहा—अच्छा चलो, निशाना लगाया जाय।

हम दोनों उस जगह पर पहुँचे जहाँ खिलौनों को गेंद से गिराया जाता था। मैंने बारह टिकट खरीद कर उस लड़के को दिए।

वह निकला पक्का निशानेबाज। उसका गेंद कोई खाली नहीं गया। देखनेवाले दंग रह गए। उसने बारह खिलौनों को बटोर लिया; लेकिन उठाता कैसे? कुछ मेरे रूमाल में बँधे, कुछ जेब में रख लिए गए।

लड़के ने कहा—बाबूजी, आपको तमाशा दिखाऊँगा। बाहर आइए। मैं चलता हूँ। वह नौ-दो ग्यारह हो गया। मैंने मन-ही-मन कहा—'इतनी जल्द आँख बदल गई।'

मैं घूमकर पान की दूकान पर आ गया। पान खाकर बड़ी देर तक इधर-उधर टहलता देखता रहा। झूले के पास लोगों का ऊपर-नीचे आना देखने लगा। अकस्मात् किसी ने ऊपर के हिंडोले से पुकारा—बाबूजी!

मैंने पूछा—कौन ?

'मैं हूँ छोटा जादूगर।'

–२–

कलकत्ता के सुन्दर बोटानिकल-उद्यान में लाल कमलिनी से भरी हुई एक छोटी-सी झील के किनारे घने वृक्षों की छाया में अपनी मंडली के साथ बैठा हुआ मैं जलपान कर रहा था। बातें हो रही थीं। इतने में वही छोटा जादूगर दिखाई पड़ा। हाथ में चारखाने की खादी का झोला, साफ जाँघिया और आधी बाहों का कुरता। सिर पर मेरा रूमाल सूत की रस्सी से बँधा हुआ था। मस्तानी चाल से झूमता हुआ आकर कहने लगा—

बाबूजी नमस्ते! आज कहिये तो खेल दिखाऊँ।

'नहीं जी, अभी हम लोग जलपान कर रहे हैं।'

'फिर इसके बाद क्या गाना-बजाना होगा बाबूजी?'

'नहीं जी'—तुमको·······मैं क्रोध से कुछ और कहने जा रहा था। श्रीमती ने कहा–दिखलाओ जी तुम तो अच्छे आये। भला कुछ मन तो बहले। मैं चुप हो गया; क्योंकि श्रीमती की बोली में वह माँ की-सी मिठास थी, जिसके सामने किसी भी लड़के को रोका नहीं जा सकता। उसने खेल आरम्भ किया।

उस दिन कार्निवल के सब खिलौने उसके खेल में अपना अभिनय करने लगे। भालू मनाने लगा। बिल्ली रूठने लगी। बन्दर घुड़कने लगा।

गुड़िया का ब्याह हुआ । गुड्डा-वर काना निकला । लड़के की बातों से ही खेल हो रहा था । सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये ।

(मैं सोच रहा था । बालक को जरूरतों ने कितना शीघ्र चतुर बना दिया । यही तो संसार है ।)

ताश के सब पत्ते लाल हो गये । फिर सब काले हो गये । गले की सूत की डोरी टुकड़े-टुकड़े होकर जुट गई । लट्टू अपने से नाच रहे थे । मैंने कहा अब हो चुका । अपना खेल बटोर लो, हम लोग भी अब जायँगे ।

श्रीमतीजी ने धीरे से उसे एक रुपया दे दिया । वह उछल उठा ।

मैंने कहा—लड़के !

'छोटा जादूगर कहिये । यही मेरा नाम है । इसी से मेरी जीविका है ।'

मैं कुछ बोलना ही चाहता था कि श्रीमती जी ने कहा—अच्छा, तुम इस रुपये से क्या करोगे ?

'पहले भर-पेट पकौड़ी खाऊँगा । फिर एक सूती कम्बल लूँगा ।' मेरा क्रोध अब लौट आया । मैं अपने पर बहुत क्रुद्ध होकर सोचने लगा—ओह ! कितना स्वार्थी हूँ मैं । उसके एक रुपये पाने पर मैं ईर्ष्या करने लगा था न ।

वह नमस्कार करके चला गया । हम लोग लता-कुञ्ज देखने के लिये चले ।

उस छोटे से बनावटी जंगल में संध्या सायँ-सायँ करने लगी थी। डूबते हुए सूर्य की अन्तिम किरण पेड़ों की पत्तियों से विदाई ले रही थी। चारों ओर सुनसान था। हम लोग धीरे-धीरे मोटर से हावड़ा की ओर आ रहे थे।

रह-रहकर छोटा जादूगर स्मरण हो आता था। सचमुच वह एक झोपड़ी के पास कम्बल कन्धे पर डाले खड़ा था। मैंने मोटर रोककर उससे पूछा—तुम यहाँ कहाँ ?

'मेरी माँ यहीं है न। अब उसे अस्पताल वालों ने निकाल दिया है।' मैं उतर गया। उस झोपड़ी में देखा, तो एक स्त्री चिथड़ों से लदी हुई काँप रही थी।

छोटे जादूगर ने कम्बल ऊपर से डाल कर उसके शरीर से चिमटते हुए कहा—माँ।

मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े।

—३—

बड़े दिन की छुट्टी बीत चली थी। मुझे अपने आफिस में समय से पहुँचना था। कलकत्ता से मन ऊब गया था। फिर भी चलते-चलते एक बार उस बाग को देखने की इच्छा हुई। साथ-ही-साथ जादूगर भी दिखाई पड़ जाता, तो और भी····मैं उस दिन अकेले ही चल पड़ा। जल्द लौट आना था।

(दस बज चुका था। मैंने देखा कि उस साफ धूप में सड़क के किनारे एक कपड़े पर छोटे जादूगर का रंग-मञ्च सजा था। मोटर रोककर उतर पड़ा। वहाँ बिल्ली रूठ रही

थी। भालू मनाने चला था, ब्याह की तैयारी थी; पर यह सब होते हुए भी जादूगर की वाणी में वह प्रसन्नता की तरी नहीं थी। जब वह औरों को हँसाने की चेष्टा कर रहा था, तब जैसे स्वयं कँप जाता था। मानो उसके रोएँ रो रहे थे। मैं आश्चर्य से देख रहा था। खेल हो जाने पर पैसा बटोरकर उसने भीड़ में मुझे देखा। वह जैसे क्षण-भर के लिए स्फूर्तिमान हो गया। मैंने उसकी पीठ थपथपाते हुए पूछा—आज तुम्हारा खेल जमा क्यों नहीं ?

'माँ ने कहा है कि आज तुरन्त चले आना। मेरी घड़ी समीप है।' अविचल भाव से उसने कहा।

'तब भी तुम खेल दिखलाने चले आये !' मैंने कुछ क्रोध से कहा। मनुष्य के सुख-दुःख का माप अपना ही साधन तो है। उसी के हिसाब से वह तुलना करता है।

उसने कहा—न क्यों आता !

और कुछ अधिक कहने में जैसे वह अपमान का अनुभव कर रहा था।

क्षण भर में मुझे अपनी भूल मालूम हो गई। उसके झोले को गाड़ी में फेंककर उसे भी बैठाते हुए मैंने कहा—'जल्दी चलो।' मोटर वाला मेरे बताये हुए पथ पर चल पड़ा।

कुछ ही मिनटों में मैं झोपड़े के पास पहुँचा। जादूगर दौड़ कर झोपड़े में "माँ-माँ" पुकारते हुए घुसा। मैं भी पीछे था; किन्तु स्त्री के मुँह से, बे···निकलकर रह गया। उसके दुर्बल हाथ उठकर गिर पड़े। जादूगर उससे लिपटा रो रहा था,

मैं भौचक्का खड़ा था। उस साफ धूप में सारा संसार जैसे जादू-सा मेरे चारों ओर नाच रहा था।

**प्रश्न**

१—लेखक महोदय उस लड़के की ओर क्यों आकृष्ट हो गये थे ?

२—सिद्ध कीजिये कि वह लड़का बड़ा देशभक्त था ?

३—वह लड़का क्यों और किस प्रकार एक छोटा जादूगर बन गया था ?

४—माँ की अधिक बीमारी में भी वह खेल दिखाने क्यों घर से चला गया था ?

## २. शंखनाद

[प्रेमचन्द]

प्रेमचन्द की पचीस चुनी हुई अमर कहानियों में 'शंखनाद' कहानी का विशेष स्थान है। इसमें प्रेमचन्द की हार्दिक पवित्रता, निश्छलता, ग्राम्य-अनुरक्ति तथा उनकी कलाकार की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि और उच्चकोटि के साहित्यकार की सर्जनात्मक प्रतिभा आदि सभी विशेषताओं का एक साथ ही परिचय मिलता है। इस कहानी में यह दिखलाया गया है कि युग के परिवर्तन के साथ-साथ किस तरह दूर के गाँवों के पिछड़े हुए वर्ग के परिवारों में भी आधुनिकता का प्रवेश हुए बिना नहीं रहता। और फिर वह आधुनिकता किस प्रकार उनके लिए कुछ दिनों तक सुविधायें देने के साथ-साथ अशान्ति के कारण भी उपस्थित कर देती है। परिणामस्वरूप बड़े परिवार में कोई न कोई ऐसा प्राणी निकल ही आता है जो कुल की प्रतिष्ठा की उपेक्षा करके अपने विपरीत आचरण से सम्मिलित परिवार के सभी सदस्यों की सुख-शान्ति को भंग कर देता है। भानु चौधरी के परिवार में उनके लाड़ले बेटे गुमान की यही दशा है। किन्तु अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहारी पारिवारिक जीवन की झाँकी के बीच महान् कलाकार प्रेमचन्द ने गुमान के सामने एक ऐसी कारुणिक परिस्थिति उपस्थित कर दी जिससे गुमान के जीवन में नई चेतना की एक विद्युत्-लहर फैल जाती है और वह जीवन में कुछ कर दिखाने का संकल्प कर लेता है। इस प्रकार इस कहानी में प्रेमचन्द जी ने यह प्रमाणित कर दिया है कि: "जिस तरह पत्थर और पानी में आग छिपी रहती है उसी तरह मनुष्य के हृदय में भी (चाहे वह कैसा ही क्रूर और कठोर क्यों न हो) उत्कृष्ट और कोमल भाव छिपे रहते हैं।" इस कहानी से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि यदि सहनशीलता और प्रेम से घर वाले काम लें तो

एक न एक दिन घर का नालायक प्राणी भी चेतना और कर्त्तव्य-पालन में रत होकर फिर से सभी को सुख और सन्तोष देने लायक बन जाता है । इस कहानी में महान् सफल कहानी के सभी तत्व उपलब्ध हैं । इसका शीर्षक अत्यन्त सार्थक तथा भाषा विषय और पात्रों के सर्वथा उपयुक्त है ।



भानु चौधरी अपने गाँव के मुखिया थे । गाँव में उनका बड़ा मान था । दारोगा जी उन्हें टाट बिना जमीन पर न बैठने देते । मुखिया साहब की ऐसी धाक बँधी हुई थी कि उनकी मर्जी बिना गाँव में एक पत्ता भी नहीं हिल सकता था । कोई घटना, चाहे वह सास-बहू का विवाद हो, चाहे मेंड़ या खेत का झगड़ा, चौधरी साहब के शासनाधिकार को पूर्णरूप से सचेत करने के लिए काफी था । वह तुरन्त घटनास्थल पर जा पहुँचते, तहकीकात होने लगती, गवाह और सबूत के बिना किसी अभियोग को सफलता सहित चलाने में जिन बातों की जरूरत होती है, उन सब पर विचार होता और चौधरी साहब के दरबार से फैसला हो जाता । किसी को अदालत जाने की जरूरत न पड़ती । हाँ इस कष्ट के लिए चौधरी साहब कुछ फीस जरूर ले लेते थे । यदि किसी अवसर पर फीस मिलने में असुविधा के कारण उन्हें धीरज से काम लेना पड़ता तो गाँव में आफत मच जाती थी; क्योंकि उनके धीरज और दारोगा जी के क्रोध में कोई घनिष्ठ संबंध था । सारांश यह कि चौधरी से उनके दोस्त-दुश्मन सभी चौकन्ने रहते थे ।

–२–

चौधरी महाशय के तीन सुयोग्य पुत्र थे। बड़े लड़के वितान एक सुशिक्षित मनुष्य थे। डाकिये के रजिस्टर पर दस्तखत कर लेते थे। बड़े अनुभवी, बड़े मर्मज्ञ, बड़े नीतिकुशल। मिर्जई की जगह कमीज पहनते, कभी-कभी सिगरेट भी पीते, जिससे उनका गौरव बढ़ता था। यद्यपि उनके ये दुर्व्यसन बूढ़े चौधरी को नापसन्द थे, पर बेचारे विवश थे, क्योंकि अदालत और कानून के मामले वितान के हाथों में थे। वह कानून का पुतला था। कानून की दफायें जबान पर रखी रहती थीं। गवाह गढ़ने में वह पूरा उस्ताद था। मँझले लड़के शान चौधरी कृषि-विभाग के अधिकारी थे। बुद्धि के मन्द, लेकिन शरीर से बड़े परिश्रमी। जहाँ घास न जमती हो वहाँ केसर जमा दें। तीसरे लड़के का नाम गुमान था। वह बड़ा रसिक साथ ही उद्दंड भी था। मुहर्रम में ढोल इतने जोरों से बजाता कि कान के पर्दे फट जाते। मछली फँसाने का बड़ा शौकीन था। बड़ा रँगीला जवान था। खँजड़ी बजा-बजाकर वह मीठे स्वर में खयाल गाता तो रंग जम जाता। उसे दंगल का ऐसा शौक था कि कोसों तक धावा मारता पर घर वाले कुछ ऐसे शुष्क थे कि उसके इन व्यसनों से तनिक भी सहानुभूति न रखते थे। पिता और भाइयों ने तो उसे ऊसर खेत समझ रखा था। घुड़की-धमकी, शिक्षा और उपदेश, स्नेह और विनय किसी का उस पर कुछ भी असर न हुआ। हाँ, भावजें अभी तक उसकी ओर से निराश न हुई थीं। वे अभी तक उसे कड़वी दवाइयाँ पिलाये जा रही थीं, पर आलस्य

वह राज-रोग है जिसका रोगी कभी नहीं सँभलता। ऐसा कोई बिरला ही दिन जाता होगा कि बाँके गुमान को भावजों के कटु वाक्य न सुनने पड़ते हों। ये विषैले शर कभी-कभी उसके कठोर हृदय में भी चुभ जाते; किन्तु यह घाव रात भर से अधिक न रहता। भोर होते ही थकान के साथ ही यह पीड़ा भी शांत हो जाती। तड़का हुआ; उसने हाथ-मुँह धोया, बंशी उठाई और तालाब की ओर चल खड़ा हुआ। भावजें फूलों की वर्षा किया करतीं, बूढ़े चौधरी पैतरे बदलते रहते और भाई लोग तीखी निगाहों से देखा करते; पर अपनी धुन का पूरा बाँका गुमान उन लोगों के बीच से इस तरह अकड़ता चला जाता, जैसे कोई मस्त हाथी कुत्तों के बीच से निकल जाता है। उसे सुमार्ग पर लाने के लिये क्या-क्या उपाय नहीं किये गये? बाप समझाता—बेटा, ऐसी राह चलो, जिसमें तुम्हें भी पैसे मिलें और गृहस्थी का भी निबाह हो। भाइयों के भरोसे कब तक रहोगे? मैं पका आम हूँ—आज टपक पड़ूँ या कल। फिर तुम्हारा निबाह कैसे होगा? भाई बात भी न पूछेंगे, भावजों का रंग देख ही रहे हो। तुम्हारे भी लड़के-बाले हैं, उनका भार कैसे सँभालोगे? खेतों में जी न लगे, तो कहो कान्स्टेबल में भरती करा दूँ। बाँका गुमान खड़ा-खड़ा वह सब सुनता, लेकिन पत्थर का देवता था कभी न पसीजता। इन महाशय के अत्याचार का दंड उनकी स्त्री बेचारी को भोगना पड़ता था। घर में मेहनत के जितने काम होते, वे उसी के सिर थोपे जाते। उपले पाथती, कुएँ से पानी लाती, आटा पीसती और इतने पर भी जेठानियाँ सीधे मुँह बात न करतीं।

वाक्यबाणों से छेदा करतीं। एक बार जब वह अपने पति से कई दिन रूठी रही, तो बाँके गुमान कुछ नर्म हुए। बाप से जाकर बोले—मुझे कोई दुकान खोलवा दीजिये। चौधरी ने परमात्मा को धन्यवाद दिया। फूले न समाये। कई सौ रुपये लगाकर कपड़े की दुकान खोलवा दी। गुमान के भाग जगे। तनजेब के चुन्नटदार कुरते बनवाये, मलमल का साफा धानी रंग में रँगवाया। सौदा बिके या न बिके, उसे लाभ ही होता था। दुकान खुली हुई है, दस पाँच गाढ़े मित्र जमे हुए हैं, चरस की दम और खयाल की तानें उड़ रही हैं—

चल झटपट री, जमुना तट री, खड़ो नटखट री !

इस तरह तीन महीने चैन से कटे। बाँके गुमान ने खूब दिल खोलकर अरमान निकाले; यहाँ तक कि सारी लागत लाभ ो गई। टाट के टुकड़े के सिवा और कुछ न बचा। बूढ़े चौधरी कुएँ में गिरने चले; भावजों ने घोर आन्दोलन मचाया—अरे राम ! हमारे बच्चे और हम चीथड़ों को तरसें, गाढ़े का एक कुरता भी नसीब न हो, और इतनी बड़ी दूकान इस निखट्टू का कफन बन गई। अब कौन मुँह दिखायेगा ! कौन मुँह लेकर घर में पैर रखेगा ! किन्तु बाँके गुमान के तेवर जरा भी मैले न हुए। वही मुँह लिये वह फिर घर आया और फिर वही पुरानी चाल चलने लगा। कानूनदाँ वितान उसके ये ठाट-बाट देखकर जल जाता। मैं सारे दिन पसीना बहाऊँ मुझे नैनसुख[1] का कुरता

[1]शब्द "चीनांशुक" का अपभ्रंश नैनसुख एक प्रकार का महीन सूती कपड़ा होता है। मलमल से जरा मोटा।

भी न मिले, यह अपाहिज सारे दिन चारपाई तोड़े और यों बन-ठनकर निकले। ऐसे वस्त्र तो शायद मुझे अपने ब्याह में भी न मिले होंगे। मीठे शान के हृदय में भी कुछ ऐसे ही विचार उठते थे। अन्त में जब यह जलन न सही गई और अग्नि भड़की तो एक दिन कानूनदाँ वितान की पत्नी गुमान के सारे कपड़े उठा लाई और उन पर मिट्टी का तेल उँड़ेलकर आग लगा दी। ज्वाला उठी। सारे कपड़े देखते-देखते जलकर राख हो गये। गुमान रोते थे, दोनों भाई खड़े तमाशा देखते थे। बूढ़े चौधरी ने यह दृश्य देखा और सिर पीट लिया। यह द्वेषाग्नि है। घर को जलाकर तब बुझेगी।

–३–

यह ज्वाला तो थोड़ी देर में शान्त हो गई, परन्तु हृदय की आग ज्यों की त्यों दहकती रही। अन्त में एक दिन बूढ़े चौधरी ने घर के सब मेम्बरों को एकत्र किया और इस गूढ़ विषय पर विचार करने लगे कि बेड़ा कैसे पार हो। वितान से बोले—बेटा, तुमने देखा कि आज बात की बात में सैकड़ों रुपयों पर पानी फिर गया। अब इस तरह निर्वाह होना असम्भव है। तुम समझदार हो मुकदमे-मामले करते हो, कोई ऐसी राह निकालो कि घर डूबने से बचे। मैं तो यह चाहता हूँ कि जब तक चोला रहे, सबको समेटे रहूँ, मगर भगवान् के मन में कुछ और ही है।

वितान की नीतिकुशलता अपनी चतुर सहगामिनी के सामने लुप्त हो जाती थी। वह अभी इसका उत्तर सोच ही रहे थे कि

श्रीमतीजी बोल उठीं—दादाजी ! अब समझाने-बुझाने से काम न चलेगा; सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया। बेटे को जितनी पीर बाप को होगी; भाइयों को उतनी क्या, उसकी आधी भी नहीं हो सकती। मैं तो साफ कहती हूँ—गुमान का तुम्हारी कमाई में हक है। उन्हें कंचन के कौर खिलाओ और चाँदी के हिंडोले में झुलाओ। हममें न इतना बूता है और न इतना कलेजा। हम अपनी झोपड़ी अलग बना लेंगे। हाँ, जो कुछ हमारा हो, वह हमको मिलना चाहिये। बाँट-बखरा कर दीजिये। बला से चार आदमी हँसेंगे, अब कहाँ तक दुनिया की लाज ढोवें ?

नीतिज्ञ वितान पर इस प्रबल वक्तृता का असर हुआ। वह उनके विकसित और प्रमुदित चेहरे से झलक रहा था। उनमें स्वयं इतना साहस न था कि इस प्रस्ताव को इतनी स्पष्टता से व्यक्त कर सकते। नीतिज्ञ महाशय गंभीरता से बोले—जायदाद मुश्तरका, मनकूला या गैर-मनकूला आपके हीनहयात तकसीम की जा सकती हैं; इसकी नजीरें मौजूद है। जमींदार को साकितुलमिल्कियत करने का कोई इस्तहकाक नहीं है।

अब मन्द-बुद्धि शान की बारी आई; पर बेचारा किसान बैलों के पीछे आँखें बन्द करके चलने वाला, ऐसे गूढ़ विषय पर कैसे मुँह खोलता। दुविधा में पड़ा हुआ था। तब उसकी सत्य-वक्ता धर्मपत्नी ने अपनी जेठानी का अनुसरण कर कठिन कार्य सम्पन्न किया। बोली—बड़ी बहन ने जो कुछ कहा, उसके सिवा और दूसरा उपाय नहीं। कोई तो कलेजा तोड़-तोड़कर कमाये मगर पैसे-पैसे को तरसे, तन ढाँकने को वस्त्र तक न मिले, और

कोई सुख की नींद सोवे, हाथ बड़ा-बढ़ा के खाय ! ऐसी अन्धेर नगरी में अब हमारा निबाह न होगा ।

शान चौधरी ने भी इस प्रस्ताव का मुक्तकंठ से अनुमोदन किया । अब बूढ़े चौधरी गुमान से बोले—क्यों बेटा तुम्हें भी यही मंजूर है ? अभी कुछ नहीं बिगड़ा । यह आग अब भी बुझ सकती है । काम सबको प्यारा है, चाम किसी को नहीं । बोलो क्या कहते हो ? कुछ काम-धन्धा करोगे या अभी आँखें नहीं खुलीं ?

गुमान में धैर्य की कमी न थी । बातों को इस कान से सुन उस कान उड़ा देना उसका नित्य-कर्म था । किन्तु भाइयों की इस जन-मुरीदी (पत्नी-परायणता) पर उसे क्रोध आ गया । बोला—भाइयों की जो इच्छा है, वही मेरे मन में भी लगी हुई है । मैं भी इस जंजाल से अब भागना चाहता हूँ । मुझसे न मजूरी हुई, न होगी । जिसके भाग में चक्की पीसना बदा हो वह पीसे ! मेरे भाग में तो चैन करना लिखा है, मैं क्यों अपना सिर ओखली में दूँ ? मैं तो किसी से काम करने को नहीं कहता । आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हैं ! अपनी-अपनी फिक्र कीजिये, मुझे आधा सेर आटे की कमी नहीं है ।

इस तरह की सभाएँ कितनी बार हो चुकी थीं, परन्तु इस देश की सामाजिक और राजनीतिक सभाओं की तरह इसमें भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता था । दो तीन दिन गुमान ने घर पर खाना नहीं खाया । जतनसिंह ठाकुर शौकीन आदमी थे उन्हीं की चौपाल में पड़ा रहता । अन्त में बूढ़े चौधरी गये

और मना के लाये । अब फिर वह पुरानी गाड़ी अड़ती, मचलती, हिलती, चलने लगी ।

—४—

चौधरी के घर के बच्चे भी बड़े सयाने थे । उनके लिये मिट्टी के घोड़े और लकड़ी की नावें कागज की नावें थीं । फलों के विषय में उनका ज्ञान असीम था, गूलर और जंगली बेर के सिवा कोई ऐसा फल न था जिसे वे बीमारियों का घर न समझते हों, लेकिन गुरदीन के खोन्चे में ऐसा प्रबल आकर्षण था कि उसकी ललकार सुनते ही उनका सारा ज्ञान व्यर्थ हो जाता था । साधारण बच्चों की तरह यदि सोते भी हों तो चौंक पड़ते थे । गुरदीन उस गाँव में सप्ताहिक फेरे लगाता था । उसके शुभागमन की प्रतीक्षा और आकांक्षा में कितने ही बालकों को बिना किंडर-गार्टन की रंगीन गोलियों के ही, संख्यायें और दिनों के नाम याद हो गये थे । गुरदीन बूढ़ा-सा मैला-कुचैला आदमी था, किन्तु आस-पास में उसका नाम उपद्रवी लड़कों के लिये हनुमान-मंत्र से कम न था । उसकी आवाज सुनते ही उसके खोन्चे पर बालकों का ऐसा धावा होता कि मक्खियों की असंख्य सेना को भी रणस्थल से भागना पड़ता था । और जहाँ बच्चों के लिए मिठाइयाँ थीं, वहाँ गुरदीन के पास माताओं के लिए इससे भी ज्यादा मीठी बातें थीं । माँ कितना ही मना करती रहे, बार-बार पैसा न रहने का बहाना करे; पर गुरदीन चट-पट मिठाइयों का दोना बच्चों के हाथ में रख ही देता, और स्नेहपूर्ण भाव से कहता—बहू जी !

पैसों की कुछ चिन्ता न करो, फिर मिलते रहेंगे, कहीं भागे थोड़े जाते हैं। नारायण ने तुमको बच्चे दिये हैं तो मुझे भी इनकी न्योछावर मिल जाती है, उन्हीं की बदौलत मेरे बाल-बच्चे भी जीते हैं; अभी क्या; ईश्वर इनका मौर तो दिखावे, फिर देखना कैसे ठनगन करता हूँ।

गुरदीन का यह व्यवहार चाहे वाणिज्य-नियमों के प्रतिकूल ही क्यों न हो, चाहे "नौ नगद सही, तेरह उधार नहीं" वाली कहावत अनुभव-सिद्ध ही क्यों न हो; किन्तु मिष्टभाषी गुरदीन को कभी अपने इस व्यवहार पर पछताने या उसमें संशोधन करने की जरूरत नहीं हुई।

मंगल का शुभ दिन था। बच्चे बड़ी बेचैनी से अपने दरवाजों पर खड़े गुरदीन की राह देख रहे थे। कई उत्साही लड़के पेड़ों पर चढ़ गये थे और कोई-कोई अनुराग से विवस होकर गाँव से बाहर निकल गए थे। सूर्य भगवान् अपना सुनहला थाल लिये पूरब से पच्छिम जा पहुँचे थे, इतने ही में गुरदीन आता हुआ दिखाई दिया। लड़कों ने दौड़कर उसका दामन पकड़ा और आपस में खींच-तानी होने लगी। कोई कहता था मेरे घर चलो; कोई अपने घर का न्योता देता था। सबसे पहले भानु चौधरी का मकान पड़ा। गुरदीन ने अपना खोन्चा उतार दिया। मिठाइयों की लूट शुरू हो गई। बालकों और स्त्रियों का ठट्ठ लग गया। हर्ष और विषाद, संतोष और लोभ, ईर्ष्या और क्षोभ, द्वेष और जलन की नाट्यशाला सज गई। कानूनदाँ वितान की पत्नी अपने तीनों लड़कों को लिए हुए निकली।

शान की पत्नी भी अपने दोनों लड़कों के साथ उपस्थित हुई। गुरदीन ने मीठी बातें करनी शुरू की। पैसे झोली में रखे, धेले की मिठाई दी, और धेले का आशीर्वाद। लड़के दोने लिये उछलते-कूदते घर में दाखिल हुए। अगर सारे गाँव में कोई ऐसा बालक था, जिसने गुरदीन की उदारता से लाभ न उठाया हो, तो वह बाँके गुमान का लड़का धान था!

यह कठिन था कि बालक धान अपने भाइयों-बहनों को हँस-हँसकर और उछल-उछलकर मिठाइयाँ खाते देखकर सब्र कर जाय। उस पर तुर्रा यह कि वे उसे मिठाइयाँ दिखा-दिखाकर ललचाते और चिढ़ाते थे। बेचारा धान चीखता और अपनी माता का आँचल पकड़-पकड़कर दरवाजे की तरफ खींचता था; पर वह अबला क्या करे? उसका हृदय बच्चे के लिए ऐंठ-ऐंठकर रह जाता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं था। अपने दुर्भाग्य पर, जेठानियों की निष्ठुरता पर और सबसे ज्यादा अपने पति के निखट्टू-पन पर कुढ़-कुढ़कर रह जाती थी। अपना आदमी ऐसा निकम्मा न होता, तो क्यों दूसरे का मुँह देखना पड़ता, क्यों दूसरों के धक्के खाने पड़ते? उसने धान को गोद में उठा लिया और प्यार से दिलासा देने लगी—"बेटा, रोओ मत, अबकी गुरदीन आवेगा, तो मैं तुम्हें बहुत-सी मिठाई ले दूँगी। मैं इससे अच्छी मिठाई बाजार से मँगवा दूँगी, तुम कितनी मिठाई खाओगे?" यह कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं। आह! यह मनहूस मंगल आज ही फिर आवेगा, और फिर ये ही बहाने करने पड़ेंगे! हाय, अपना प्यारा बच्चा धेले की मिठाई को तरसे और घर में किसी

का पत्थर-सा कलेजा न पसीजे ! वह बेचारी तो इन चिंताओं में डूबी हुई थी और धान किसी तरह चुप ही न होता था। जब कुछ बस न चला तो माँ की गोद से जमीन पर उतर कर लोटने लगा और रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा ली। माँ ने बहुत बहलाया, फुसलाया; यहाँ तक कि उसे बच्चे के इस हठ पर क्रोध भी आ गया। मानव-हृदय के रहस्य कभी समझ में नहीं आते। कहाँ तो बच्चे को प्यार से चिपटाती थी, कहाँ ऐसी झल्लाई कि उसे दो-तीन थप्पड़ जोर से लगाये और घुड़ककर बोली—"चुप रह अभागे ! तेरा ही मुँह मिठाई खाने का है ? अपने दिन को नहीं रोता, मिठाई खाने चला है !"

(बाँका गुमान अपनी कोठरी के द्वार पर बैठा हुआ यह कौतुक बड़े ध्यान से देख रहा था। वह इस बच्चे को बहुत चाहता था। इस वक्त के थप्पड़ उसके हृदय में तेज भाले के समान लगे और चुभ गये। शायद उनका अभिप्राय भी यही था। धुनिया रुई को धुनकने के लिए ताँत पर चोट लगाता है।

जिस तरह पत्थर और पानी में आग छिपी रहती है, उसी तरह मनुष्य के हृदय में भी—चाहे वह कैसा ही क्रूर और कठोर क्यों न हो—उत्कृष्ट और कोमल भाव छिपे रहते हैं। गुमान की आँखें भर आईं। आँसू की बूँदें बहुधा हमारे हृदय की मलिनता को उज्जवल कर देती हैं। गुमान सचेत हो गया। उसने जाकर बच्चे को गोद में उठा लिया और अपनी पत्नी से करुणोत्पादक स्वर में बोला—"बच्चे पर इतना क्रोध क्यों करती हो ? तुम्हारा दोषी मैं हूँ, मुझको जो दंड चाहो दो।)

परमात्मा ने चाहा तो कल से लोग इस घर में मेरा और मेरे बाल-बच्चों का भी आदर करेंगे। तुमने आज मुझे सदा के लिए इस तरह जगा दिया, मानो मेरे कानों में शंखनाद कर मुझे कर्म-पथ में प्रवेश करने का उपदेश दिया हो।"

प्रश्न

१—आपकी समझ में गुमान की काहिली और सुस्ती के क्या कारण थे?

२—इस कहानी में गुमान की माता का कोई उल्लेख नहीं है। यदि गुमान की माता होती तो क्या उसका जीवन कुछ दूसरे प्रकार का न हुआ होता?

३—भानु चौधरी के सम्मिलित परिवार में गुमान की पत्नी अपनी जेठानी से अधिक काम करती थी; पर सबसे अधिक उपेक्षित थी। यह कहाँ तक उचित था?

४—गुमान के व्यक्तित्व में आपको क्या अच्छा और क्या बुरा लगता है, और क्यों?

———

## ३. ताई

[विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक]

पुराने ढंग के सम्मिलित धनी हिन्दू-परिवार में धार्मिक, सदाचारी तथा परिवार के सभी प्राणियों के हित के लिए छाती फाड़कर परिश्रम करने वाला घर का मुखिया प्रायः अपनी पत्नी के लिए अच्छा से अच्छा अन्न-वस्त्र और आभूषण जुटाकर यह कभी सोच ही नहीं पाता कि उसे अपनी स्त्री के लिये अब और क्या करना बाकी रह गया है। बाबू रामजीदास एक ऐसे ही आदर्श कुल-स्वामी हैं। सन्तान के अभाव में उनकी पत्नी रामेश्वरी देवी की क्या मनोदशा है उसे वे न तो पहचान सकते हैं और न पहचानना ही चाहते हैं। वे उसके मन की अभाव-व्यथा की कल्पना तक नहीं कर सकते। यही कारण है कि वे अपनी पत्नी की भावनाओं को उसकी दृष्टि से देख सकने की क्षमता या उदारता का क्षणभर के लिए भी परिचय नहीं दे पाते, उल्टे उसकी हर एक बात को उल्टा और गलत समझकर उससे अधिकाधिक खिचते ही जाते हैं। इस कहानी में लेखक ने उस परिस्थिति का अपूर्व सुघराई और कौशल से निर्माण किया है जिसमें फँसकर, संसार में किसी को भी अपना न समझ, प्रायः स्त्रियाँ बेबसी के अथाह सागर में डूब जाती हैं, और कभी-कभी आत्महत्या तक कर लेती हैं। गिरते हुए मनोहर को बचा लेने की अनिच्छा वाली उनकी क्षणिक दुर्बलता को आत्महत्या नहीं तो और क्या कहा जायगा? किन्तु महान् कहानी-लेखक ने इस अमर कहानी में अपूर्व घटनाओं का विधान करके उस दारुण परिस्थिति में पड़ गई रामेश्वरी देवी का काया-कल्प ही करा दिया है जिससे बीमारी के पूर्व वाली रामेश्वरी का अन्त हो जाता है। और बीमारी के बाद वाली रामश्वरी देवी का एक नवीन जीवन के साथ पुत्रवती होकर

पुनर्जन्म होता है। कौन है वह उनका पुत्र ? वही मनोहर जो "अब उनका प्राणाधार हो गया है" और "जिसके बिना अब उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।"

कौशिक जी बाल मनोविज्ञान के बहुत बड़े पारखी हैं। इसी कारण वे मनोहर के तोतले—लेलगाड़ो (रेलगाड़ी), दूल (दूर), बछ औल (बस और) आदि शब्दों को बाबू रामजीदास के मुँह से "लेलगाड़ी" आदि न कहलाकर 'रेलगाड़ी' आदि ही कहलाते हैं। बाल मनोविज्ञान को समझने वाले यह अच्छी तरह जानते होंगे कि किसी बालक के मुँह से निकलने वाले इस प्रकार के तोतले शब्दों को ज्यों का त्यों उसके सामने सयानों के उच्चारण करने से उस बालक की मानसिक प्रगति में बड़ी बाधा पहुँचती है। हिन्दू-परिवार की समस्याओं को जितनी अधिक गहराई में समझने और उनका जितना विशद यथार्थ चित्रण करने की कौशिक जो में क्षमता थी उतनी क्षमता हिन्दी के किसी भी अन्य कहानी-लेखक में नहीं पाई जाती। मध्यवर्गीय हिन्दू-घरों में स्त्रियों की व्यंजनामयी भाषा और उनके अनोखे शब्द तथा ठसकेदार वाक्य किस तरह के होते हैं उसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण रामेश्वरी के संवादों में मिलता है। सारांश यह कि सभी दृष्टियों से विचार करने पर हिन्दी-कहानी-साहित्य में "ताई" का स्थान अप्रतिम है। अर्थात् इस विषय की इस कहानी के जोड़ की दूसरी कोई कहानी (अमरकान्त के "केले, पैसे और मूँगफली" को छोड़कर) हिन्दी में अब तक लिखी नहीं गई है।

"ताऊजी, हमें लेलगाड़ी ला दोगे ?"—कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाँहें फैलाकर कहा—"हाँ बेटा, ला देंगे।"

उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमकर बोले—"क्या करेगा रेलगाड़ी ?"

बालक बोला—"उसमें बैठकर बड़ी दूल जायँगे। हम भी जायँगे, चुन्नी को भी ले जायँगे। बाबू जी को नहीं ले जायँगे। हमें लेलगाली नहीं ला देते! ताऊजी तुम ला दोगे; तो तुम्हें ले जायँगे।"

बाबू०—"और किसे ले जायगा ?"

बालक दम-भर सोचकर बोला—"बछ, औल किसी को नहीं ले जायँगे।"

पास ही बाबू रामजीदास की अर्धाङ्गिनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—"और अपनी ताई को नहीं ले जायगा ?

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताई जी इस समय कुछ चिढ़ी हुई-सी बैठी थीं। बालक को उनके मुख का यह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—"ताई को नहीं ले जायँगे।"

ताई जी सुपारी काटती हुई बोलीं—"आपने ताऊ को ही ले जा! मेरे ऊपर दया रख!"

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया। बाबू साहब ने पूछा—"ताई को क्यों नहीं ले जायगा ?"

बालक—"ताई हमें प्याल नहीं कलतीं।"

बाबू०—"जो प्यार करें तो ले जायगा?"

बालक को इसमें कुछ सन्देह था। ताई का भाव देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेंगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—"क्यों रे, बोलता क्यों नहीं? ताई प्यार करें तो, रेल पर बिठाकर ले जायगा?"

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिला कर स्वीकार कर लिया; परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धाङ्गिनी के पास ले जाकर उनसे बोले—"लो, इसे प्यार कर लो, यह तुम्हें भी ले जायगा।" परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की चुहलबाजी अच्छी न लगी। वह तुनक कर बोलीं—"तुम्हीं रेल पर बैठकर जाओ, मुझे नहीं जाना है।"

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चे को उनकी गोद में बिठाने की चेष्टा करते हुए बोले—"प्यार नहीं करोगी, तो फिर रेल में नहीं बिठायेगा—क्यों रे मनोहर?"

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोहर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया, चुमकार कर चुप किया और तत्पश्चात् उसे कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी ला

देने का वचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भयपूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले—"तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? बच्चे को ढकेल दिया। जो उसके चोट लग जाती तो?"

रामेश्वरी मुँह लटकाकर बोलीं—"लग जाती तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे। आप ही तो उसे मेरे ऊपर डालते थे और अब आप ही ऐसी बातें करते हैं।"

बाबू साहब कुढ़कर बोले—"इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं?"

रामेश्वरी—"और नहीं तो किसे कहते हैं? तुम्हें तो अपने आगे और किसी का दुःख-सुख सूझता ही नहीं। न-जाने कब किसका जी कैसा होता है। तुम्हें इन बातों की कुछ परवाह ही नहीं, अपनी चुहल से काम है।"

बाबू साहब—"बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें सुनकर तो चाहे जैसा जी हो प्रसन्न हो जाता है। मगर तुम्हारा हृदय न-जाने किस धातु का बना हुआ है।"

रामेश्वरी—"तुम्हारा हो जाता होगा। और होने को होता भी है; मगर वैसा बच्चा भी तो हो! पराये धन से भी कहीं घर भरता है?"

बाबू साहब कुछ देर चुप रहकर बोले—"यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे?"

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोलीं--"बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो; पर मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं। नहीं तो ये दिन काहे को देखने पड़ते। तुम्हारी चलन तो दुनिया से निराली है। आदमी सन्तान के लिए न-जाने क्या-क्या करते हैं--पूजा-पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं, पर तुम्हें इन बातों से क्या काम? रात-दिन भाई-भतीजों में मग्न रहते हो।"

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा--"पूजा-पाठ, व्रत सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं, वह पूजा-पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा यह अटल विश्वास है।"

श्रीमती जी कुछ रुँआसे स्वर में बोलीं--"इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रक्खा है! ऐसे विश्वास पर ही बैठे रहें, आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे?"

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं, अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गये।

—२—

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम करते हैं। लेन-देन भी है। इनके एक छोटा भाई है। उसका नाम है, कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदास की आयु ३५ वर्ष के लगभग है, और छोटे भाई कृष्णदास २१ के लगभग। रामजीदास निःसन्तान हैं।

कृष्णदास के दो सन्तानें हैं; एक पुत्र--वही पुत्र, जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं--और एक कन्या है। कन्या की आयु दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उनकी सन्तान पर बड़ा स्नेह रखते हैं--ऐसा स्नेह कि उसके प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिले-मिले हैं कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तान-हीनता का बड़ा दुःख है। वह दिन-रात सन्तान ही के सोच में घुला करती हैं। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उनकी आँख में काँटों की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शय्या पर लेटे हुए शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शय्या पर रामेश्वरी, हथेली पर सिर रक्खे, किसी चिन्ता मे डूबी हुई थीं। दोनों बच्चे अभी बाबू साहब के पास से उठकर अपनी माँ के पास गये थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट लेकर कहा--"आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह से ढकेला था कि मुझे अब तक उसका दुःख है। कभी-कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिल्कुल ही अमानुषिक हो उठता है।"

रामेश्वरी बोलीं--"तुम्हीं ने ऐसा बना रक्खा है। उस दिन उस पण्डित ने कहा था कि हम दोनों के जन्म-पत्र में सन्तान

का जोग है, और उपाय करने से सन्तान भी हो सकती है, उसने उपाय भी बताये थे; पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मग्न हो। तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना न होना तो भगवान् के अधीन है।"

बाबू साहब हँसकर बोले—"तुम्हारी-जैसी सीधी स्त्री भी ....क्या कहूँ! तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो, जो दुनियाँ भर के झूठे और धूर्त हैं! ये झूठ बोलने ही की रोटियाँ खाते हैं।"

रामेश्वरी तुनक कर बोलीं—"तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे हैं? पंडित कुछ अपनी तरफ से तो बनाकर कहते ही नहीं हैं; शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है, तो वे भी झूठे हैं। अंगरेजी क्या पढ़ी अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादों के जमाने से चली आई हैं, उन्हें भी झूठा बनाते हैं।"

बाबू साहब—"तुम बात तो समझती ही नहीं, अपनी ही ओटे जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष शास्त्र झूठा है। संभव है, वह सच्चा हो, परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं। दो-एक छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठते हैं, और लोगों को

ठगते फिरते हैं। ऐसी दशा में उन पर कैसे विश्वास किया जा सकता है ?"

रामेश्वरी—"हूँ ! सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक सच्चे हो ? अच्छा, एक बात पूछती हूँ, भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती ?"

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले—"भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसके हृदय में सन्तान का मुख देखने की इच्छा न हो ? परन्तु किया क्या जाय ? जब नहीं है, और न होने की आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ ? इसके सिवा, जो बात अपनी सन्तान से होती, वही भाई के सन्तान से भी हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है जो आनन्द उनकी बाल-क्रीड़ा से आता, वही उनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय !"

रामेश्वरी कुछ कुढ़कर बोलीं—"तुम्हारी समझ को मैं क्या कहूँ। इसी से तो रात-दिन जला करती हूँ। भला यह बताओ कि हमारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा ?"

बाबू साहब हँसकर बोले—"अरे, तुम भी कहाँ की पोच बातें लाईं। नाम सन्तान से नहीं चलता, नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके ? इसी प्रकार कितने महात्मा हो गए हैं, उन सब का नाम क्या उनकी सन्तान ही की

बदौलत चल रहा है? सच पूछो, तो सन्तान से जितनी नाम चलने की आशा रहती है, उतनी नाम डूब जाने की संभावना रहती है। परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरधारीलाल कितने नामी आदमी थे? उनके सन्तान कहाँ है? पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला जा रहा है और न जाने कितने दिनों तक चला जायगा?"

रामेश्वरी—"शास्त्र में लिखा है कि जिसके पुत्र नहीं होता उसकी मुक्ति नहीं होती है।"

बाबू—"मुक्ति पर मुझे विश्वास ही नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम? यदि मुक्ति होना मान भी लिया जाय, तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवानों की मुक्ति हो ही जाती है? मुक्ति का भी सहज उपाय है, ये जितने पुत्र वाले हैं; सभी की तो मुक्ति हो जाती होगी?"

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोलीं—"अब तुमसे कौन बकवास करे, तुम तो अपने सामने किसी की मानते ही नहीं।"

—३—

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्वप्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, जब तक मनुष्य उसको पराई समझता है, तब तक उससे प्रेम नहीं करता। किन्तु भद्दी-से-भद्दी और काम में न आने वाली वस्तु को भी यदि मनुष्य अपनी समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी

ही मूल्यवान क्यों न हो, कितनी ही उपयोगी क्यों न हो, कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उनके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं करता, इसलिए कि वह वस्तु उसकी नहीं, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो काम में न आनेवाली हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य को दुःख होता है; इसलिए कि वह अपनी चीज है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई चीज से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में भी जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपनी बनाकर नहीं छोड़ता अथवा अपने हृदय में यह विचार नहीं दृढ़ कर लेता कि यह वस्तु मेरी है, तब तक उसे संतोष नहीं होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है, प्रेम से ममत्व। इन दोनों का साथ चोली-दामन का-सा है। ये कभी पृथक् नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उनका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उनके हृदय में वे सभी गुण विद्यमान तथा अंतर्निहित थे, जो एक माता के हृदय में होते हैं, परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उनका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है, पर उसको सींचकर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लाने वाला कोई नहीं। इसलिये उनका हृदय उन बच्चों की ओर खिचता तो था, परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं, दूसरे के हैं, तब उनके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी। विशेषकर उस समय उनके द्वेष की मात्रा और भी

बढ़ जाती थी, जब वह देखती थीं कि उनके पतिदेव उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उनके (रामेश्वरी के) नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थीं। उनके पास ही देवरानी भी बैठी थी। दोनों बच्चे छत पर दौड़कर खेल रहे थे, रामेश्वरी उनके खेलों को देख रही थीं। इस समय रामेश्वरी को उन बच्चों का खेलना-कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल की तरह खिले हुए उनके नन्हें-नन्हें मुख, उनकी प्यारी-प्यारी तोतली बातें, उनका चिल्लाना, भागना, लोट जाना इत्यादि क्रीड़ायें उनके हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा। वह खिलखिलाती हुई दौड़कर रामेश्वरी की गोद में जा गिरी। उसके पीछे-पीछे मनोहर भी दौड़ा हुआ आया और वह भी उन्हीं की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गईं। उन्होंने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है, जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उन्होंने बड़ी सहिष्णुता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित मनुष्य उन्हें देखता; तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी ही उन बच्चों की माता है।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उनकी गोद में खेलते रहे। सहसा उसी समय किसी के आने की आहट पाकर बच्चों की माता वहाँ से उठकर चली गई।

"मनोहर, ले रेलगाड़ी !"—कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आये। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़पकर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया, फिर बैठकर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद-सी टूटी। पति को बच्चों में मगन होते देखकर उसकी भवें तन गईं। बच्चों के प्रति फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जाग उठा।

बच्चों को रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आये और मुस्कराकर बोले—"आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं ! इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी इनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।"

रामेश्वरी को पति की यह बात बहुत बुरी लगी। उन्हें अपनी कमजोरी पर बड़ा दुःख हुआ। केवल दुःख ही नहीं अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दुःख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उनकी कमजोरी पति पर प्रकट हो गई, यह बात उनके लिये असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले—"इसीलिए मैं कहता हूँ कि अपनी संतान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो तो तुम्हें ये ही अपनी सन्तान प्रतीत होने लगेंगे ! मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।"

यह बात बाबू साहब ने नितान्त शुद्ध हृदय से कही थी; परन्तु रामेश्वरी को इसमें व्यंग की तीक्ष्ण गन्ध मालूम हुई।

उन्होंने कुढ़कर मन में कहा—इन्हें मौत भी नहीं आती। मर जायें, पाप कटे! आठों पहर आँखों के सामने रहने से प्यार करने को जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देखकर कहा—"अब झेंपने से क्या लाभ? अपने प्रेम को छिपाना व्यर्थ है। छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।"

रामेश्वरी जल-भुनकर बोलीं—"मुझे क्या पड़ी है जो मैं प्रेम करूँगी? तुम्हीं को मुबारक रहे। निगोड़े आप ही आ-आकर घुसते हैं। एक घर में रहने से कभी-कभी हँसना-बोलना ही पड़ता है। अभी परसों जरा यों ही ढकेल दिया उस पर तुमने सैकड़ों बातें सुनाईं। संकट में प्राण है; न यों चैन, न यों चैन।"

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुनकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—"न जाने कैसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी-खासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिट की तरह रंग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे, पर कहने से बल्लियों उछलती है। न-जाने मेरी बातों में कौन-सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है तो न कहा करूँगा। इतना याद रखो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े-सिगोड़े अपशब्द निकाले, तो अच्छा न होगा! तुमसे मुझे बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।"

रामेश्वरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वह आँखों द्वारा निकालने लगीं।

जैसे-ही-जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बच्चे पर बढ़ता जाता था, वैसे-वैसे रामेश्वरी के द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्रायः बच्चों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी और रामेश्वरी को पति के कटुवचन सुनने पड़ते थे। जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के कारण वह पति की नजरों से गिरती जा रही है, तब उनके हृदय में बड़ा तूफान उठा। उन्होंने सोचा--पराये बच्चों के पीछे यह मुझसे प्रेम कम करते जाते हैं, मुझे हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिए बच्चे ही सब कुछ हैं। मैं कुछ भी नहीं ! दुनिया मरती जाती है, पर इन दोनों को मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गये। न होते, न मुझे ये दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे उस दिन घी के चिराग जलाऊँगी। इन्होंने ही मेरा घर सत्यानाश कर रक्खा है।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी हुई थीं। उनके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं, वही अपनी निज की सन्तान का अभाव, पति का भाई की सन्तान के प्रति अनुराग—इत्यादि। कुछ देर बाद उनके विचार स्वयं कष्टदायक प्रतीत होने लगे। तब वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने के लिए उठकर टहलने लगीं।

वह टहल रही थीं कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देखकर उनकी भृकुटी चढ़ गई, और वे छत की चहारदीवारी पर हाथ रखकर खड़ी हो गईं।

संध्या का समय था। आकाश में रङ्ग-बिरङ्गी पतंगें उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतंगों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतंग कटकर उसकी छत पर गिरे, तो क्या ही आनन्द आये। देर तक पतंग गिरने की आशा करने के बाद वह दौड़कर रामेश्वरी के पास आया, और उनकी टाँगों में लिपटकर बोला—"ताई, हमें पतंग मँगा दो।"

रामेश्वरी ने झिड़ककर कहा—"चल हट, अपने ताऊ से माँग जाकर।"

मनोहर कुछ अप्रतिभ होकर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यन्त करुण स्वर में कहा—"ताई पतंग मँगा दो; हम भी उड़ायेंगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं। फिर उन्होंने एक लम्बी साँस लेकर मन-ही-मन कहा—यदि यह मेरा पुत्र होता, तो आज मुझ-सी भाग्यवान स्त्री संसार में दूसरी न होती। निगोड़-मारा कितना सुन्दर है, और कैसी प्यारी-प्यारी बातें करता है। यही जी चाहता है कि उठाकर छाती से लगा लें।

यह सोचकर वह उसके सिर पर हाथ फेरने वाली ही थीं, इतने में मनोहर उन्हें मौन देखकर बोला—"तुम हमें पतंग नहीं मँगवा दोगी तो ताऊ जी से कहकर तुम्हें पिटवायेंगे।"

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी बड़ी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध के मारे लाल हो गया। वह उसे झिड़ककर बोलीं—"जा कह दे अपने ताऊ से देखूँ वह मेरा क्या कर लेंगे?"

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से हट आया, और फिर सतृष्ण नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतंगों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा—यह सब ताऊ जी के दुलार का फल है कि बालिश्त-भर का लड़का मुझे धमकाता है। ईश्वर करे; इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से एक पतंग कटकर उसी छत की ओर आई, और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गई। छत के चारों ओर चहारदीवारी थी। जहाँ रामेश्वरी खड़ी हुई थीं, केवल वहाँ पर एक द्वार था, जिससे छज्ज पर आ-जा सकते थे। रामेश्वरी इस द्वार से सटी हुई खड़ी थीं। मनोहर ने पतंग को छज्जे पर जाते देखा। पतंग पकड़ने के लिए वह दौड़कर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रहीं। मनोहर उनके पास से होकर छज्जे पर चला गया और उनसे आधे मीटर की दूरी पर खड़ा होकर पतंग को देखने लगा। पतंग छज्जे पर से होती हुई नीचे, घर के आँगन में, जा गिरी। एक पैर छज्जे की मुँडेर पर रखकर मनोहर ने नीचे आँगन में झाँका और पतंग को आँगन में गिरते देख प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिये शीघ्रता से घूमा; परन्तु घूमते

समय मुँडेर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथों में मुँडेर आ गई। वह उसे पकड़कर लटक गया और रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया—"ताई!" रामेश्वरी ने धड़कते हुए कलेजे से इस घटना को देखा। उनके मन में आया कि अच्छा है, मरने दो, सदा का पाप कट जायगा। यही सोचकर वह छणभर के लिए रुकीं। उधर मनोहर के हाथ मुँडेर पर से फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुण नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया—"अरी ताई!" रामेश्वरी की आँखों से मनोहर की आँखें आ मिलीं। मनोहर की वह करुण दृष्टि देखकर रामेश्वरी का कलेजा मुँह को आ गया। उन्होंने व्याकुल होकर मनोहर को पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा भी नहीं था कि मनोहर के हाथ से मुँडेर छूट गई। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख मारकर छज्जे पर गिर पड़ीं।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में बेहोश पड़ी रहीं। कभी-कभी वह जोर से चिल्ला उठतीं और कहतीं—"देखो-देखो, वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ—दौड़ो—मेरे मनोहर को बचा लो।" कभी वह कहतीं····"बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। "हाँ, हाँ मैं चाहती तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी।" इसी प्रकार के प्रलाप वह किया करतीं। मनोहर की टाँग उखड़ गई थी। टाँग बिठा दी गई। वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगी।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा—"मनोहर कैसा है ?"

रामजीदास ने उत्तर दिया—"अच्छा है।"

रामेश्वरी—"उसे मेरे पास लाओ।"

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे प्यार से हृदय लगाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। हिचकियों से गला रुंध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गईं। अब वह मनोहर की बहिन चुन्नी से भी द्वेष और घृणा नहीं करतीं और मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया है। उसके बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

**प्रश्न**

१—रामेश्वरी के प्रति रामजीदास का दृष्टिकोण तथा व्यवहार उचित था या अनुचित ? अपना मत प्रमाण सहित व्यक्त कीजिये।

२—मनोहर के प्रति रामेश्वरी के कठोर व्यवहार में किस हद तक रामजीदास जिम्मेदार माने जायँगे या नहीं माने जायँगे ?

३—स्पष्ट कीजिये कि "ताई" एक सफल मनोवैज्ञानिक कहानी है।

४—रामेश्वरी के हृदय में परिवर्तन क्यों हुआ ? कारण बतलाइये।



## ४. उसने कहा था

[चन्द्रधर शर्मा गुलेरी]

बाल्यावस्था में एक बालक और एक बालिका में, सड़क पर एक-दो बार की उनकी देखा-देखी में, परस्पर कुछ उत्साहजनित जो वार्तालाप हुआ और एक को दूसरे का एक क्षीण परिचय मिला था, बहुत-सा समय अनदेखा बीत जाने पर भी उसी ने उन दोनों में जिस निश्छल स्नेह, प्रबल विश्वास तथा पवित्र प्रीति को जन्म दिया उसी को साकार करने के लिये एक विशाल और उदात्त रंगभूमि या समरांगण में इस महान् कहानी की अवतारणा हुई है। एक भारतीय सच्चे सिपाही की वीरता कितनी विशाल होती है; एक साध्वी पतिपरायणा हिन्दू नारी की परपुरुष की सराहना का पवित्रतम रूप कैसा हो सकता है; एक देशभक्त विदेश में अपने देश की प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिये किस प्रकार प्राण तक दे सकता है; और क्षण भर के परिचय से पोषित स्नेह में दिये हुए अपने वचन का पालन करने में एक सिख बहादुर किस तरह हँसते-हँसते अपने को उत्सर्ग कर सकता है, इन सब का साक्षात्कार करने के लिये इस अमर कहानी को एक बार पढ़कर बार-बार पढ़ने का मन करता है। यह कहानी भारतीय धीर-वीरता का प्रतीक और तरुणाई के उल्लसित उन्माद तथा समर्पण की अमर कहानी है। प्रथम विश्व महायुद्ध का पूरा खाका खींच देनेवाली और फ्रांस के समरांगण में भारतीय शौर्य, पराक्रम तथा त्याग का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व कर देनेवाली यह हिन्दी की एकमात्र कहानी है। यही कारण है कि इसे हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी माना गया है।

जिस प्रकार मनोदशाओं और व्यक्तियों की विशेषताओं को शब्दों द्वारा चित्रित कर देने में प्रेमचन्द के समान कोई नहीं है, उसी प्रकार वाता-

वरण, घटनाओं और वस्तुस्थितियों को शब्दों द्वारा सप्राण कर उन्हें मूर्तिमान कर देने की गुलेरी जी की क्षमता अद्वितीय है। नारी जाति को जितनी श्रद्धा और सहानुभूति गुलेरी जी की लेखनी में प्राप्त हुई है उतनी जैनेन्द्र जी को छोड़ उसे अन्यत्र कहीं से नहीं मिली है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि सामान्य पाठक भी उनके पांडित्य से तनिक भी बोझिल हुए बिना उनकी कृतियाँ पढ़ते समय अपने को कुछ ऊपर उठता-सा अनुभव करने लगता है। कुछ आलोचक उनकी "बुद्धू का काँटा" कहानी को "उसने कहा था" से भी अधिक पुष्ट और मौलिक कहानी मानते हैं।



बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्टवालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए, इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट-सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चींथकर अपने-ही को सताया हुआ बताते हैं, और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में, हर-एक लड्ढीवाले के लिए ठहरकर, सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसा जी!' 'हटो भाई जी!'

'ठहरना भाई!' 'आने दो लाला जी!' हटो बाछा*! कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बतकों, और गन्ने, खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है, कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पसन्द हो। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं है, वह चलती है—मीठी छुरी की तरह, महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा जीणे जोगिए; हट जा करमा वालिए; हट जा पुत्तां प्यारिए; बच जा लम्बी वालिए। समष्टि में इनके अर्थ हैं, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है?—बच जा।

ऐसे बम्बूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिक्ख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो एक किलो गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ हैं?'

'मगरे में;—और तेरे?'

'माँझे में;—यहाँ कहाँ रहती है?'

---

*बादशाह

'अतरसिंह की बैठक में; वे मेरे मामा हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाजार में है।'

इतने में दूकानदार निबटा और इनको सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा—'तेरी कुड़माई[1] हो गई?'

इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई। लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, दूधवाले के यहाँ अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा—'तेरी कुड़माई हो गई?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध, बोली—'हाँ हो गई।'

'कब?'

'कल; देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू[2]।'

लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छावड़ीवाले की दिनभर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उँड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पाई, तब कहीं घर पहुँचा।

---

१. मँगनी २. ओढ़नी

–२–

'राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है ? दिन-रात खन्दकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाना से दस-गुना जाड़ा और मेह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं, गनीम कहीं दिखता नहीं;—घंटे-दो-घंटे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ सौ मीटर धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था, यहाँ दिन में पचीस जल-जले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।'

'लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आ जायगी, और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका[1] करेंगे और पेटभर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी[2] मेम के बाग में—मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो।'

'चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकला मारकर न लौटूँ,

१. बकरा मारना २. फ्रेंच

तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में दस-दस कुन्तल का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—पाँच किलोमीटर तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—'

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों?' सूबेदार हजारा सिंह ने मुस्करा कर कहा—'लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। पाँच सौ किलोमीटर का सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा?'

'सूबेदार जी, सच है'—लहनासिंह बोला—'पर करें क्या? हड्डियों-हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के-से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय, तो गरमी आ जाय।'

'उदमी उठ, सिगड़ी में कोयले डाल; वजीरा, तुम चार जने बालटियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदला दे।'—यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—'मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण?'—इस पर सब खिलखिला पड़े, और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर उसके हाथ में देकर कहा—'अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।'

'हाँ देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा[1] जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे[2] लगाऊँगा।'

'लाड़ीहोरां[3] को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम—'

'चुप कर, यहाँ वालों को शरम नहीं।'

देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिक्ख तम्बाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है और पीछे हटता हूँ, तो समझती है, कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।'

'अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है?'

'अच्छा है।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊँ! रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है, और 'निमोनिया' में मरने वालों को मुरब्बे[4] नहीं मिला करते।

---

१. जमीन की एक नाप २. पेड़ ३. स्त्री का आदरसूचक शब्द ४. नई नहरों के पास वर्गभूमि।

'मेरा डर मत करो । मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा । भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के पेड़ की छाया होगी ।'

वजीरासिंह ने त्यौरी चढ़ाकर कहा—'क्या मरने-मारने की बात लगाई है ? मरे जर्मनी और तुरक ! हाँ भाइयो, कैसे—

और फिर मस्त होकर सबने एक गीत गाया ।

कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले, घरबारी सिक्ख ऐसा लुच्चों का गीत गायेंगे, पर सारी खन्दक इस गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों ।

—३—

दो पहर रात गई है । अन्धेरा है । सन्नाटा छाया हुआ है । बोधासिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर, अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और बरानकोट* ओढ़कर सो रहा है । लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है । एक आँख खाईं के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर । बोधासिंह कराहा ।

'क्यों बोधा भाई, क्या है ?'

'पानी पिला दो ।'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—'कहो कैसे हो ?' पानी पीकर बोधा बोला—'कँपनी छूट रही है । रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं । दाँत बज रहे हैं ।'

*ओवरकोट

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।'

'और तुम ?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है। पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिए—'

'हाँ याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करे। यों कहकर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो ?'

'और नहीं झूठ ?'—यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आई—'सूबेदार हजारासिंह !'

'कौन लपटन साहब ? हुकुम हुजूर'—कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी समय धावा करना होगा। किलोमीटर भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से जियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान

खड़े कर आया हूँ । तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो । खन्दक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो । हम यहाँ रहेगा ।'

'जो हुक्म ।'

चुपचाप सब तैयार हो गये । बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा । तब लहनासिंह ने उसे रोका । लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया । लहनासिंह समझकर चुप हो गया । पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई । कोई रहना न चाहता था । समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया । लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गये और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे । दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—'लो तुम भी पियो ।'

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया । मुँह का भाव छिपाकर बोला 'लाओ साहब ।' हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा । बाल देखे । तब उसका माथा ठनका । लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह कैदियों-से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये ?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है ? लहनासिंह ने जाँचना चाहा । लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे ।

'क्यों साहब हम लोग हिन्दुस्तान कब जायेंगे ?'

'लड़ाई खत्म होने पर। क्यों क्या यह देश पसन्द नहीं ?'

'नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पार-साल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी जिले में शिकार करने गये थे—'हाँ हाँ'—वहीं जब आप खोते* पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था। 'बेशक पाजी कहीं का'—सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मेस में लगायेंगे।'—'हो, पर मैंने वह विलायत भेज दिया।' ऐसे बड़े-बड़े सींग ! आधे-आधे मीटर के तो होंगे !'

'हाँ लहनासिंह, आधे मीटर से कुछ अधिक ही थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया ?'

'पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ—कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

'अँधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

'कौन ? वजीरासिंह ?'

---

*गधा

'हाँ, क्यों लहनासिंह ? क्या कयामत आ गई ? जरा तो आँख लगने दी होती ?"

—४—

'होश में आओ। कयामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।'

'क्या ?'

'लपटन साहब या तो मारे गये हैं या कैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की हैं। सौहरा* साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू और मुझे पीने को सिगरेट दिय।'

'तो अब ?'

'अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार होराँ कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दक की बात झूठ है। चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खुड़के। देर मत करो।'

'हुकुम तो यह है कि यहीं—'

'ऐसी-तैसी हुकुम की! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह, जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।'

*सुसरा (गाली)

'पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।'

'आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिक्ख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।'

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले, तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ कर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने—

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आँख! मीन गौट्ट' कहते हुए चित्त हो गये। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्च्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—'क्यों लपटन साहब! मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिक्ख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगायें होती हैं और उनके आधे मीटर से कुछ अधिक सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल

चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आये ! हमारे लपटन साहब तो बिना 'डैम' के पाँच लफ्ज भी नहीं बोला करते।'

लहना ने पतलून के जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेब में डाले।

लहनासिंह कहता गया—'चालाक तो बड़े हो, पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने की तावीज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था जर्मनीवाले बड़े पण्डित हैं। वेद पढ़-पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायेंगे तो हत्या बन्द कर देंगे। मन्डी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपया निकाल लो; सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूँड़ दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था कि मेरे गाँव में अब पैर रक्खा तो—'

साहब की जेब में से पिस्तौल चली और लहना की जाँघ में गोली लगी; इधर लहना की हैनरीमार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया—'क्या है ?'

लहनासिंह ने उसे यह कहकर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो गये। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधीं। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था—वह खड़ा था, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े-से मिनटों में वे……

अचानक आवाज आई 'वाह गुरुजी दी फतह! वाह गुरुजी दा खालसा!!' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों के ऊपर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—'अकाल सिक्खां दी फौज आई! वाह गुरुजी दी फतह! वाह गुरुजी दा खालसा!! सत श्री अकाल पुरुख!!!'—और लड़ाई खतम हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आर-पार निकल गई। लहना-

सिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी साफा कसकर कमरबन्द की तरह, लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव--भारी घाव—लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे दस-दस किलो फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पाकर वे उसकी तुरन्त-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज पाँच किलोमीटर दाहिनी ओर की खाईं वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घंटे के अन्दर-अन्दर आ पहुँचीं। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायेंगे, इसीलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रक्खी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सबेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना

ने कहा—'तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।'

'और तुम?'

'मेरे लिए वहाँ पहुँच कर गाड़ी भेज देना और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।'

'अच्छा, पर—'

'बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिये तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।'

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—'तैंने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?'

'अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना, और कह भी देना।'

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया।—'वज़ीरा, पानी पिला दे, और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।'

—५—

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्मभर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे

दृश्यों के रंग साफ होते हैं; समय की धुन्ध बिल्कुल उन पर से हट जाती है

× × ×

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्जीवाले के यहाँ, हर कहीं उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है 'तेरी कुड़माई हो गई है?' तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा--'हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू?' सुनते ही लहनासिंह को दु:ख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

'वजीरासिंह, पानी पिला दे।'

× × ×

पचीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं० ७७ रैफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न-मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजीमेंट के अफसर की चिट्टी मिली कि फौज लाम पर जाती है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था, और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेड़े[1] में से निकलकर आया। बोला—'लहना सूबेदारनी तुझको जानती हैं बुलाती हैं। जा मिल आ।' लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना!' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गई—धत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटोंवाला सालू—अमृतसर में—'

भावों की टकराहट से मूर्च्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

'वजीरा, पानी पिला'—उसने कहा था।

× × ×

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों[2] की एक घँघरिया पलटन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुये उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए,

१. जनाने २. स्त्रियों

पर एक भी नहीं जिया।'—सूबेदारनी रोने लगी।—'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे, और मुझे उठाकर दूकानदार के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता बाहर आया।

× × ×

लहना का सिर अपनी गोद में रक्खे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है तब पानी पिला देता है। आध घन्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—'कौन! कीरतसिंह?'

वजीरा ने कुछ समझकर कहा—'हाँ।'

'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ठे पर मेरा सिर रख ले।' वजीरा ने वैसा ही किया।

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़* में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने मैंने इसे लगाया था।'

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

*आषाढ़

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—फ्रांस और बेलजियम—६८वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिक्ख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

**प्रश्न**

१—"उसने कहा था" कहानी को आप हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी क्यों मानते हैं, या क्यों नहीं मानते हैं ?

२—"उसने कहा था" कहानी में लहना बालक और "उस" बालिका के बीच जो प्रेम हुआ था वह फिर कभी देखे बिना किस कारण इतने दिनों तक अंकुरित रहा ? क्या उसका इस प्रकार अंकुरित रहना स्वाभाविक माना जा सकता है ?

३—नकली लपटन को लहनासिंह जो एक सिपाही था पहचान गया था, किन्तु सूबेदार हजारासिंह जो लपटन के साथ लहनासिंह से अधिक रहे थे उसे क्यों नहीं पहचान सके ?

४—"उसने कहा था" कहानी में जो कुछ "उसने कहा था" उसका पालन कर चुकने पर भी घायल लहना ने अपना घाव क्यों छिपाया, और घायलों वाली गाड़ी में अस्पताल जाकर अपनी मरहम-पट्टी कराने से क्यों मुँह मोड़ लिया ?

———

## ५. कोटर और कुटीर

[स्व० सियारामशरण गुप्त]

विश्व के एक महान् उपन्यासकार के अमर उपन्यास (थाया) में एक प्रमुख पात्र का कथन है कि : "इस संसार में मानव से न तो कुछ खास अच्छा हो सकना संभव है और न कुछ बुरा ही। फिर भी मनुष्य से यदि कोई भलाई हो सकती है तो इतनी ही कि जो कुछ अच्छा लोग करते आये हैं वही वह भी करता चले।" संक्षेप में इस अमर कहानी का यही मन्तव्य है। सियारामशरण गुप्त पवित्र आत्मा और पवित्र लेखनी वाले हिन्दी के प्रसिद्ध कलाकार थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में जगबीती को कम और आपबीती को अधिक स्थान दिया है। कोटर वाले चातक और चातक पुत्र की कहानी 'परम्परा-बनाम प्रगति' की कहानी है; किन्तु कुटीर वाले बुद्धन और उसके पुत्र गोकुल की कहानी शद्ध परंपरा-पालन की कहानी है। कोटर से कुटीर को अधिक प्रबुद्ध बताकर लेखक ने वर्तमान मानव-समाज की एक तीखे व्यंग्य द्वारा आलोचना की है। प्रकृति ने पक्षी की अपेक्षा मानव को अधिक सचेष्ट बनाया है; अतः मानव को सबसे अधिक जाग्रत और कर्मरत होना ही चाहिये। किन्तु आज क्या हो रहा है? पशु-पक्षी भी अपने सजातीय पर तब तक चोंच या पंजा नहीं मारते जब तक वह धराशायी होकर निष्प्राण नहीं हो जाता। परन्तु मनुष्य तो जीवित मनुष्य पर ही हमला करता है।

चातक परम्परा-पालन करने वालों में आदर्श है और चातक-पुत्र असहनशील नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहा है। परम्परा की रक्षा में सचमुच बड़ा कष्ट झेलना पड़ता है, किन्तु जो लोग आरम्भ में कुछ समय तक वे सभी कष्ट झेल लेते हैं उन्हें परम्परा-पालन में ही जीवन का सच्चा

रस मिलने लगता है। तभी तो चातक अपने पुत्र से कहता है कि "बेटा! भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिए थोड़ी सी क्षुधा सहन करना अनिवार्य ही नहीं आवश्यक भी है।" इतना ही नहीं चातक के समान व्रतधारी और लोक-मंगल के लिए कष्ट सह लेने पर भी अपने कर्तव्य का पालन करने वाले लोग अपना जीवन तो सार्थक करते ही हैं, वे अपने समस्त समाज और विश्व के लिए भी कल्याणकारी हो जाते हैं। चातक भी अपने पुत्र से यही कहता है: "बेटा! अभी तुम नासमझ हो। चाहे जहाँ से पानी ग्रहण करना अभी तुम आसान समझ रहे हो। परन्तु जब इसके लिए बाहर निकलोगे तब तुम्हें मालूम पड़ेगा। हमारी प्यास के साथ करोड़ों की प्यास है और तृप्ति के साथ करोड़ों की तृप्ति। तुमसे अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा?

यह सत्य है कि नई पीढ़ी व्याकुल, उद्विग्न और असहनशील होती है और वह प्रगति के नाम पर प्रायः असहनशीलता का परिचय देती है। किन्तु यह भी निश्चित है, और महात्मा गाँधी का जीवन इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि सहनशीलता के साथ लोक-मंगल की भावना से परम्परा के प्रति सम्मान रखने वाले प्रगतिशील व्यक्तियों द्वारा ही सच्ची प्रगति संभव होती है। लेखक पर गाँधी जी के जीवन और सिद्धान्तों की--सत्य, अहिंसा तथा मानव के प्रति करुणा और संवेदना की--गहरी छाप है।

卐

## कोटर

दोपहरी का समय था। सूर्य अग्नि-शलाकाओं से पृथ्वी का शरीर दग्ध कर रहा था। वृक्षों के पत्ते निस्पन्द थे। मानो किसी भयंकर काण्ड की आशंका से साँसें साधे खड़े थे। इसी समय

अपने छोटे से कोटर के भीतर बैठे हुए चातक-पुत्र ने कहा--"पिता जी !"

चातक ने अपनी चोंच कुमार की पीठ पर फेरते हुए प्यार से कहा--"क्या है बेटा !"

"है और क्या ? प्यास के मारे चोंच तक प्राण आ गये हैं ।"

"बेटा, अधीर न हो । समय सदा एक-सा नहीं रहता ।"

"तो यही तो मैं भी कहता हूँ--समय सदा एक-सा नहीं रहता । पुरानी बातें पुराने समय के लिए थीं । आप अब भी उन्हें इस तरह छाती से चिपकाये हुए हैं, जिस तरह बानरी मरे बच्चे को चिपकाये रहती है । घनश्याम की बाट जोहते रहिए । अब मुझसे यह नहीं सध सकता ।"

"घनश्याम के सिवा हम और किसी का जल ग्रहण नहीं करते । यही हमारे कुल का व्रत है । इस व्रत के कारण अपने गोत्र में न तो किसी की मृत्यु हुई और न कोई दूसरा अनर्थ ।"

"आप कहते हैं--कोई अनर्थ नहीं हुआ । मैं कहता हूँ, प्यास की इस यन्त्रणा से बढ़कर और अनर्थ क्या होगा । जहाँ से भी होगा मैं जल ग्रहण करूँगा ही ।"

चातक सिहरकर पंख फड़फड़ाने लगा । थोड़ी देर तक चुप रहकर वह बोला--"बेटा धैर्य रख । अपने इस व्रत के कारण ही पानी बरसता है और धरती माता की गोद हरी-भरी होती है । यह व्रत इस तरह नष्ट कर देने की वस्तु नहीं ।"

लाड़ले लड़के ने कहा—"व्रत-पालन करते हुए इतने दिन तो हो गये, पानी का कहीं चिह्न तक नहीं है ! गरमी ऐसी पड़ रही है कि धरती के नदी-नाले सब सूख गये। फिर सूर्य के और निकट रहने वाले आकाश के मेघों में पानी टिक ही कैसे सकता है ?"

"बेटा, पृथ्वी का यह निर्जल उपवास है। इसी पुण्य से उसे जीवन दान मिलेगा। भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिए थोड़ी-सी क्षुधा सहन करना अनिवार्य ही नहीं आवश्यक भी है।"

"पिता जी, मैं थोड़ी-सी क्षुधा से नहीं डरता। परन्तु यह भी नहीं चाहता कि क्षुधा ही क्षुधा सहन करता रहूँ। मैं ऐसा व्रत व्यर्थ समझता हूँ। देवताओं का अभिशाप लेकर भी मैं इसे तोड़ूँगा। घनश्याम को भी तो सोचना चाहिए था कि उनके बिना किसी के प्राण निकल रहे हैं। आदमी ने मेघों पर अविश्वास करके कृषि की रक्षा के लिए नहर, तालाब और कुओं का बन्दोबस्त कर लिया है। कृषि ने आपकी तरह सिर नहीं हिलाया कि मैं तो घनश्याम के सिवा और किसी का जल नहीं छुऊँगी। हमीं क्यों इस तरह कष्ट सहें। आप चाहे मुझे रक्खें या छोड़ें, मैं यह झंझट न पालूँगा।"

चातक ने देखा—मामला बेढब हुआ चाहता है। यह इस तरह न मानेगा। कहा—"यह बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे ?"

चातक-पुत्र चुप। उसने अभी तक इस बात पर विचार ही नहीं किया था। वह सोचता था, जिस प्रकार लाखों जीव-जन्तु जल

पीते हैं, उसी प्रकार मैं भी पीऊँगा। परन्तु वह प्रकार कैसा है, यह उसकी समझ में न आया था।

लड़के को चुप देखकर पिता ने समझा—कमजोरी यहीं है। वह जानता था कि कमजोरी पर ऊपर से ही आक्रमण करना विजय की पहली सीढ़ी है। बोला—"चुप कैसे रह गये ? बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे ?"

हिचकिचा कर, अपनी बात स्वयं ही खण्ड-खण्ड करते हुए, लड़के ने कहा—"जहाँ से और दूसरे ग्रहण करते हैं, वहीं से मैं भी पीऊँगा।"

पिता ने कहा—"पड़ोस में वह पोखरी है। अनेक पशु-पक्षी और आदमी भी वहाँ जल पीते हैं तुम वहाँ जल पी सकोगे ? बोलो है हिम्मत ?"

चातक-पुत्र को उस पोखरी के स्मरण से ही फुरहरी आ गई। अह, उसमें कितनी गन्दगी है ? पत्ते, सूखी डंठलें आदि गिर-गिर कर उसमें सड़ते रहते हैं। कीड़े कुलबुलाते हुए उसमें साफ दिखाई देते हैं। लोग उसमें कपड़े निखारने आते हैं, कि गन्दा करने, यह कई बार सोचने पर भी वह समझ न सका था। अब इस समय वह पिता से कैसे कहे कि मैं उस पोखरी का पानी पीऊँगा ?

चातक बोला—"बेटा, अभी तुम नासमझ हो। चाहे जहाँ से पानी ग्रहण करना इस समय तुम आसान समझ रहे हो। परन्तु जब इसके लिए बाहर निकलोगे तब तुम्हें मालूम पड़ेगा। हमारी प्यास के साथ करोड़ों की प्यास है और तृप्ति के साथ करोड़ों की तृप्ति। तुमसे अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा ?"

चातक-पुत्र इस समय अपने हठ को पुष्ट करने वाली कोई युक्ति सोच रहा था। पिता की बात बिना सुने वह बोल उठा--"मैं गङ्गा-जल ग्रहण करूँगा।"

चातक ने कहा--"गङ्गा जी तो यहाँ से पाँच दिन की उड़ान पर हैं। तू नहीं मानता तो जा। परन्तु यदि तूने और कहीं एक बूँद भी ली, तो हमें मुँह न दिखाना।"

चातक-पुत्र प्रणाम करके फर्र-से उड़ गया।

-२-

## कुटीर

बुद्धन का कच्चा खपरैल का घर था। छोटी-छोटी दो कोठरियाँ, फिर उन्हीं के अनुरूप आँगन और उसके आगे पौर। पुराना छप्पर नीचे झुककर घर के भीतर आश्रय लेने की बात सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध दरारों से पूरी किया चाहती थीं!

उस घर में और कुछ हो या न हो, आँगन के बीच, चातक-पुत्र के विश्राम करने योग्य नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिए वह उसी पर उतरा।

नीम की स्निग्धता तथा सघनता ने चातक-पुत्र को अपने सहकार (आम) की याद दिला दी। विश्राम पाकर भी उसके जी में एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई।

नीचे वृक्ष की छाया में बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास के ऊपर थी। फिर भी अभी कुछ दिन पहले तक, उसके

पैरों में जीवन-यात्रा की इतनी ही मंजिल तय करने योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात (लकवा) ने उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने आपस में सुलह कर मानो आधे-आधे शरीर का बँटवारा कर लिया! स्त्री पहले ही गत हो चुकी थी। घर में १५-१६ वर्ष का एकमात्र पुत्र गोकुल ही अवशिष्ट था। उसी के सहारे उसके दिन पूरे हो रहे थे।

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रतिदिन संध्या समय तक लौट आता था। आज अभी तक नहीं आया था, इसलिए बुद्धन उसके लिए छटपटा रहा था। ऊपर आकाश में तारे छिटक आये थे। इधर-उधर चारों ओर सन्नाटा था और घर में अकेला बुद्धन। यद्यपि उसमें खाट के नीचे तक उतरने की शक्ति न थी, तो भी उसका मन न जाने कहाँ-कहाँ चौकड़ी भर रहा था। गोकुल सबेरे थोड़े से चने खाकर काम पर गया था। बुद्धन के लिए भी थोड़े-चने और पीने का पानी यथास्थान रख गया था। आज खाने के लिए घर में और कुछ था ही नहीं। कह गया था, शाम को मजूरी के पैसों का आटा लाकर रोटी बनाऊँगा, परन्तु आज वह अभी तक नहीं आया था। अनेक आशंकाओं से बुद्धन का मन चंचल हो उठा। जो समय आनन्द की स्निग्ध शीतल छाया में शीत काल के दिन की तरह मालूम भी नहीं होने पाता और निकल जाता है वही दुःख दाहक ज्वाला में निदाघ के दीर्घ दिनों की भाँति अकाट्य हो उठता है। रात बहुत नहीं बीती थी। परन्तु बुद्धन को मालूम हो रहा था कि

समय हो गया। बार-बार अपने कान खड़े करके रात के उस सन्नाटे में वह गोकुल के पद-शब्द सुनने का प्रयत्न कर रहा था।

बड़ी देर बाद उसकी प्रतीक्षा सफल हुई। किवाड़ खुलने की आवाज सुनकर चौंका। वास्तव में यह गोकुल था। उसने कहा—"कौन, गोकुल!—बेटा, आज बड़ी देर लगाई।"

गोकुल धीरे से पिता की खाट के पास आकर रोने लगा।

बुद्धन ने घबराकर पूछा—"क्या हुआ बेटा! क्या हुआ?"

"आज मजूरी नहीं मिली। अब कैसे चलेगा?"

ऐं मजूरी नहीं मिली। फिर इतनी देर क्यों हुई।"

प्रकृतिस्थ होकर गोकुल ने उसे सारा हाल सुनाया।

× × ×

सबेरे घर से निकलते ही गोकुल को सामने खाली घड़ा मिला। देखकर उसके पैर ढीले हो गए। सोचा—"आज भगवान् ही मालिक हैं। काम पर पहुँचकर देखा—"इंजीनियर साहब काम देखने आये थे। जान पड़ता है, काम देखने की जगह वे ओवरसीयर साहब को ही देखने गये थे। अन्याय का यह बोझा उन्होंने दिनभर मजदूरों पर अच्छी तरह उतारा। शाम को मजदूरी देने के समय भी साफ इंकार कर दिया—आज दाम नहीं दिये जायेंगे। उस अदालत के फैसले की तरह, जिसकी कहीं अपील नहीं हो सकती। ओवरसीयर साहब का हुक्म मान सब मजदूर अपने-अपने घर लौट गए।"

गोकुल लौटा चला आ रहा था कि एक जगह उसे रास्ते में कुछ पड़ा दिखाई दिया। पास पहुँचने पर मालूम हुआ, रुपये-पैसे रखने का बटुआ है। उठाकर देखा तो काफी वजनदार था। वह सोच में पड़ गया—इसे खोलकर देखना चाहिए या नहीं। न देखने का निश्चय ही उसे दृढ़ करना पड़ा। कौतूहल-निवृत्ति करने के लिए उसने उसे टटोला। टटोलने पर मालूम हुआ—रुपये हैं और बहुत कम भी नहीं। थोड़ी देर तक वह वहीं खड़ा-खड़ा सोचता रहा—इसका क्या करूँ? उसके पिता ने उसे अब तक जो कुछ सिखाया था, उसने उसे इस बात के सोचने का अवसर ही नहीं दिया कि बटुआ अपने पास रख ले। वह यही सोच रहा था कि वह बटुआ किसका है? जब उसे मालूम होगा कि उसका बटुआ खो गया है तब उसकी क्या दशा होगी? रुपये-पैसे का क्या मूल्य है, यह बात कुछ दिनों में ही, वह अच्छी तरह जान गया था। उस व्यक्ति की उस समय की दशा का विचार करके वह इस प्रकार सिहर उठा मानो उसी का बटुआ खो गया हो।

उसे ध्यान आया कि कुछ दूर उसने एक गाड़ी जाती हुई देखी थी। उस पर कान में मोती-पिरोई सोने की बाली पहिने हुये एक महतो बैठे थे। सम्भव है यह बटुआ उन्हीं का हो। और किसी के पास इतने रुपये होना आसान भी नहीं है। यहाँ कुएँ पर गाड़ी रोक कर उन्होंने पानी पिया होगा और आग जलाकर तमाखू भरी होगी। एक जगह आग जलाई जाने के चिह्न मौजूद थे। उसने इस बात का विचार ही नहीं किया कि गाड़ी तक जाने में कितना समय लगेगा और वह दौड़ पड़ा।

लगभग आधे घंटे के परिश्रम से वह उस गाड़ी के पास पहुँच गया। गोकुल ने हाँफते-हाँफते पूछा--"महतो तुम्हारा कुछ खो तो नहीं गया ?"

महतो ने चौंककर गाड़ी में इधर-उधर देखा। साथ ही जेब पर हाथ रखा तो पाषाण की तरह निस्पन्द हो गए। गोकुल से महतो की वह अवस्था देखी न गई। वह बटुआ दिखाकर उसने झट से प्रश्न कर दिया--"यह तुम्हारा है ?"

एक क्षण में ही जीवन और मृत्यु का द्वन्द्व-सा हो गया। मानो बिजली के खटके से प्रकाश बुझाकर घर फिर से उद्दीप्त कर दिया गया हो ? महतो ने कहा--"भगवान् तुझे सुखी रक्खें भैया ! इसे कहाँ पाया ?"

"रास्ते में पड़ा था। इसमें कितने रुपये हैं ?"

महतो ने हिसाब लगाकर बताया--"बयालिस रुपये, एक अठन्नी, एक घिसी हुई बेकाम दुअन्नी, दस या बारह आने पैसे, एक चाँदी का छल्ला--"

गोकुल ने बटुआ खोलकर रुपये गिने। सब ठीक निकले। बटुआ हाथ में लेकर महतो की आँखों में आँसू भर आये, बोले—"इतनी बड़ी रकम पाकर भी जिसे उसका लोभ न हो, भैया मैंने ऐसा आदमी आज तक नहीं देखा। यदि किसी और को यह बटुआ मिलता तो मेरा मरण हो जाता। मेरा रोम-रोम असीस रहा है। भगवान् तुम्हें सदा सुखी रक्खें।" यह कहकर महतो ने बटुए से निकालकर गोकुल को दो रुपए देने चाहे। उसने सिर

हिलाकर कहा—"मेरे बप्पा ने किसी से भीख लेने के लिए मुझे मना कर दिया है। मुफ्त के ये रुपये मैं न लूँगा।"

महतो के सजल नेत्र विस्मय से खुले ही रह गये। गोकुल थोड़ी ही देर में उस अन्धकार में उनकी आँखों से ओझल हो गया।

× × ×

सब वृत्तान्त सुनाकर गोकुल अपराधी की भाँति खड़ा होकर बोला—"बप्पा, आज खाने के लिये कुछ नहीं है। महतो से कुछ उधार माँग लाता तो सब ठीक हो जाता। मेरी समझ में यह बात उस समय आई ही नहीं।"

बुद्धन की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे। गोकुल को अपनी दोनों भुजाओं में भर कर उसने छाती से लगा लिया। आनन्दातिरेक ने उसका कण्ठावरोध कर दिया! उसे मालूम हुआ कि उसके क्षुधित और निर्जीव शरीर में प्राणों का संचार हो गया है। उसे जिस तृप्ति का अनुभव होने लगा वह दो-एक दिन की तो बात ही क्या जीवनभर को क्षुधा शान्त कर सकती है। धन-संपत्ति, मान और बड़ाई सब उसे तुच्छ से प्रतीत होने लगे। मानो एका-एक उसके सब दुःख रोग दूर हो गये हैं। अब वह बिना किसी चिन्ता के मृत्यु का आलिङ्गन इसी क्षण कर सकता है।

बड़ी देर में अपने को सँभालकर बुद्धन बोला—"अच्छा ही किया बेटा, जो तू महतो से रुपये उधार नहीं लाया। वह उधार माँगना भी एक तरह का माँगना ही होता! भगवान् ने तुझे ऐसी बुद्धि दी है, मैं तो यही देखकर निहाल हो गया। दो-एक दिन की भूख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जिस तरह चातक

अपने प्राण देकर भी मेघ के सिवा किसी दूसरे का जल लेने का व्रत नहीं तोड़ता, उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेक न छोड़ना। मुझे मालूम हो गया यह तू मुझसे भी अच्छी तरह जानता है। फिर भी कहता हूँ---सदा ऐसी ही मति रखना, चाहे जितनी बड़ी विपत्ति पड़े, अपनी नियत न डुलाना।"

× × ×

ऊपर चातक-पुत्र सब सुन रहा था। उसकी आँखों से भी झर-झर आँसू झरने लगे। बड़ी कठिनता से वह रात बिता सका। पौ फटते ही बड़े सबेरे वह फिर उड़ा। परन्तु आज वह विपरीत दिशा को चला, उसी दिशा को जिधर से वह आया था। उसकी उड़ान पहले से तेज हो गई थी। फिर भी अपने कोटर तक पहुँचने में उसे चार दिन की जगह सात दिन लग गये। दूसरे दिन से ही मेघों ने उठकर ऐसी झड़ी लगा दी कि बीच-बीच में कई जगह रुककर ही वह वहाँ तक पहुँच सका!

**प्रश्न**

१---'कोटर और कुटीर' कहानी को पढ़कर आप इसके लेखक के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में क्या-क्या कल्पना कर सकते हैं?

२---गोकुल ने रुपयों की थैली पाने पर जिस तरह का व्यवहार किया क्या उसे आप स्वाभाविक मानते हैं? उसे आप गोकुल के लिए लाभदायक समझते हैं या हानिकारक?

३---चातक-पुत्र प्यासा होकर भी गंगा की ओर न जाकर किस कारण से फिर अपने कोटर को लौट आया था?

४---गोकुल और "छोटा जादूगर" के चरित्र की तुलना कीजिये।

## ६. मछुए की बेटी

### [सुभद्राकुमारी चौहान]

बेटी, बहन अथवा पत्नी आदि सभी रूपों में सुभद्राजी के व्यक्तित्व में माता का ही रूप सर्वाधिक प्रशस्त था। यही कारण है कि उनके साहित्य में मातृत्व की ही छटा अधिक चटकीली होकर छाई हुई है। इसका प्रमाण उनकी अधिकांश कवितायें और "तीन बच्चे", "मछुए की बेटी" जैसी कहानियाँ हैं। बच्चों के प्रति अगाध ममता और स्नेह के साथ-साथ उनके जन्म, संवर्धन, लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा तथा प्रेमाचार और विवाह सभी की ओर सुभद्राजी का एक माता के समान ही ध्यान गया है। अतः इस सम्बन्ध में उनकी अनुभूति, सलाह और संकेत आज की पढ़ी-लिखी लड़कियों और लड़कों दोनों ही के लिये विचारणीय एवं आचरणीय हैं।

'मछुए की बेटी' तिन्नी ऊपर से स्वच्छन्द या अनियंत्रित-सी जान पड़ती हुई भी पूर्णतया संयमित तथा तन के ही समान मन की भी स्वस्थ है। तभी तो मनोहर के यह कहने पर कि तिन्नी सदा मनोहर के हृदय की रानी रही है और रहेगी, वह रुखाई के साथ उससे पूछती है कि "बिना विवाह हुए ही मैं तुम्हारी या तुम्हारे हृदय की रानी कैसे बन सकती हूँ?" और फिर जब आजकल के तरुणों वाली बहकी-बहकी शब्दावली में मनोहर कहता है कि "तिन्नी! रानी बनने के लिए विवाह थोड़े जरूरी है। जिसे हम प्यार करें वही हमारी रानी!" तब तिन्नी का चेहरा तमतमा उठता है और वह मुँहतोड़ जवाब देती हुई कहती है। घत्! मैं ऐसी रानी नहीं बनना चाहती। ऐसी रानी से तो मछुए की बेटी ही भली! वास्तव में तिन्नी का यह वाक्य मनोहर के ही समान ऊँचे घरों की आजकल की उन अधिक पढ़ी हुई लड़कियों को सम्बोधित है जो बिना

विवाह के ही किसी की रानी बन जाने के लिए तैयार रहती हैं। प्रसाद जी के 'छोटा जादूगर' के ही समान तिन्नी को भी उसके वातावरण की "जरूरतों ने शीघ्र चतुर बना दिया था।" शारीरिक श्रम करने के कारण उसके मुँह पर अद्भुत कान्ति छाई हुई थी। प्रकृति की उन्मुक्त पाठशाला ने किशोरावस्था को कुंठाओं के खतरे से उसे सर्वथा मुक्त रखकर वयस्कों जैसी विचारों और भावनाओं की स्थिरता प्रदान कर दी थी। अतः स्कूल या कालेज की शिक्षा न पा सकने पर भी उसमें आज की पढ़ी-लिखी लड़कियों से कम व्यक्तित्व नहीं था। नारी-जीवन में विवाह सम्भावित प्रेम को ही उचित बतलाकर वह सच्चरित्रता का परिचय देती और कुल-परम्परा के प्रति श्रद्धा प्रकट करती हुई "कोटर और कुटीर" कहानी के स्वरों की याद दिलाती है। लेखिका ने बिना पढ़ी-लिखी, उदात्त चरित्र-वाली मछुए की बेटी के सम्मुख एक पढ़े-लिखे कुलीन राजकुमार को वासना में पड़कर अत्यधिक व्याकुल दिखलाकर आधुनिक शिक्षा प्राप्त तरुणों में से अपनी मर्यादा का ध्यान न रखने वालों के अव्यवस्थित चित्त की दयनीयता का सुन्दर नमूना प्रस्तुत किया है। कहानी के अन्त में तिन्नी को राजकुमार कृष्णदेव जी की सगी बहिन सिद्ध कराके राजकुमार जी जैसे दिलफेकों को एक प्रकार से चेतावनी दी गई है कि बिना जाने-बूझे किसी तरुणी को देखते ही यों आसक्त हो जाना ठीक नहीं, क्योंकि कौन जाने कहीं अन्त में वह उनकी सगी बहिन ही न प्रमाणित हो जाय?



चौधरी और चौधराइन के लाड़-प्यार ने तिन्नी को बड़ी ही स्वच्छन्द और उच्छृंखल बना दिया था। वह बड़ी निडर और कौतूहल-प्रिय थी। आधी रात पिछली पहर, जब तिन्नी की इच्छा होती वह नदी पर जाकर नाव खोलकर जल-विहार

करती और स्वच्छ लहरों पर खेलती हुई चन्द्र-किरणों की अठखेलियाँ देखती।

यही कन्या चौधरी की सब कुछ थी, किन्तु फिर भी आज तक चौधरी उसका विवाह न कर सके थे, क्योंकि कन्या के योग्य कोई वर चौधरी को अपनी जात में न देख पड़ता था। इसीलिए तिन्नी अभी तक क्वाँरी ही थी।

नदी के पार, और उस पार से इस पार लाने का चौधरी ने ठेका ले रक्खा था। चौधरी की अनुपस्थिति में तिन्नी अपने पिता का काम बड़ी योग्यता से करती थी।

–२–

"आज इतनी जल्दी कहाँ जा रही हो तिन्नी?"

"क्या तुम नहीं जानते?"

"क्या?"

"यही कि राजा साहब आज उस पार जायेंगे।"

"कौन राजा साहब?"

"तुम्हें यह भी नहीं मालूम?"

"मैं आज ही तो यहाँ आया हूँ।"

"और अब तक कहाँ थे?"

"अपने घर।"

"तो जैसे मैं रात-दिन घाट ही पर तो बनी रहती हूँ न? इसलिए मुझे सब कुछ जानना चाहिए और तुम्हें कुछ भी नहीं। तुम मुझे वैसे ही तंग किया करते हो। जाओ अब मैं तुमसे बात भी न करूँगी।"

तिन्नी को चिढ़ाकर उसकी क्रोधित मुद्रा को देखने में युवक को बहुत आनन्द आता था। इसलिए यह प्रायः इसी प्रकार के बेसिर-पैर के प्रश्न करके उसे चिढ़ा दिया करता था। किन्तु आज बात तो जरा टेढ़ी हो गई थी। तिन्नी ने क्रोध में यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि अब वह युवक से बोलेगी ही नहीं। इसलिए मुँह फेरकर वह तेजी से घाट की ओर चल दी। युवक ने तिन्नी का रास्ता रोक लिया और बड़े विनीत और नम्र भाव से बोला—

"तिन्नी! सच बता दे मेरी तिन्नी! मैं तेरा डाँड़ चला दूँगा। तेरा आधा काम कर दूँगा।"

तिन्नी के क्रोध से भरे मुख पर हँसी नाच गई। युवक उसके साथ डाँड़ चला देगा। उसे एक साथी मिल जायेगा। इस बात को सोचकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह बोली—

"सच कहते हो? मेरे साथ तुम डाँड़ चलाओगे? देखो बापू नहीं हैं, मैं अकेली हूँ। यदि तुम सचमुच मेरे साथ डाँड़ चलाने को कहो तो फिर मैं बताती हूँ।"

"सच नहीं तो क्या झूठ? मैं डाँड़ जरूर चलाऊँगा। पर पहिले तुझे बताना पड़ेगा।" युवक ने कहा।

"इधर अपने पास ही कोई रियासत है न? वहीं के राजा साहब नदी के उस पार शिकार खेलने जायँगे। महीना-पन्द्रह दिन का काम है। मनोहर! खूब अच्छा रहेगा। खूब पैसे भी मिलेंगे। मैं तुम्हें भी दिया करूँगी। पर इतना वादा करो कि जब तक बापू लौटकर न आवें तुम रोज मेरे साथ डाँड़ चलाया करोगे।"

"यह कौन-सी बड़ी बात है तिन्नी ? यदि तू मान जा तो मैं तेरे साथ जीवन भर डाँड़ चलाने को तैयार हूँ ?"

"तो जैसे मैंने कभी इन्कार किया हो। नेकी और पूछ-पूछ ? तुम मेरा डाँड़ चलाओगे और मैं इन्कार कर दूँगी ?"

"तो तिन्नी तू मुझसे विवाह क्यों नहीं कर लेती ! फिर हम दोनों जीवन भर डाँड़ चलाते रहेंगे।"

क्षणभर के लिए तिन्नी के चेहरे पर लज्जा की लाली दौड़ गई। किन्तु तुरन्त ही वह सम्हल कर बोली "कहने के लिए तो कह गये मनोहर ! किन्तु आज मैं विवाह के लिए तैयार हो जाऊँ तो ?"

"तो मैं खुशी के मारे पागल हो जाऊँ !"

"फिर उसके बाद ?"

"फिर मैं तुम्हें रानी बनाकर अपने आपको दुनिया का बादशाह समझूँ।"

"अपने आपको बादशाह समझोगे ? क्यों मनोहर ! और मैं बनूँगी रानी ! पर रानी बनने के बाद मैं डाँड़ तो न चलाऊँगी अभी से कहे देती हूँ।"

"तब मैं ही क्यों डाँड़ चलाने लगा ? मैं राजा और तुम बनोगी मेरी रानी। फिर डाँड़ चलायेंगे हमारे तुम्हारे नौकर।"

"अच्छा यह बात है ?" कहकर तिन्नी खिलखिलाकर हँस पड़ी। और दोनों हँसते हुए घाट की तरफ चले गये।

—३—

एक बड़ी नाव पर राजा साहब और उनके पुत्र कृष्णदेव अपने कई मुसाहिबों के साथ उस पार जाने के लिए बैठे। तिन्नी कई मछुओं और मनोहर के साथ डाँड़ चलाने लगी। तिन्नी नाव भी खेती जाती थी और साथ ही मनोहर से हँस-हँसकर बातें भी करती जाती थी। वायु के झोंके के साथ उड़ते हुए उसके काले घुँघराले बाल उसके सुन्दर मुख को और भी मोहक बना रहे थे। तिन्नी को ध्यान न था कि कृष्णदेव उसके मुँह की ओर किस स्थिरता के साथ देख रहे हैं। किन्तु राजा साहब से पुत्र के मन की हालत छिपी न रही। युवाकाल में उनके जीवन में भी कई बार ऐसे मौके आ चुके थे।

अब कृष्णदेव प्रायः प्रतिदिन ही जल-विहार के लिए नौका पर आते और डाँड़ चलाने का काम बहुधा तिन्नी ही किया करती। कृष्णदेव के अनबोले प्रेम और सौंदर्य ने तिन्नी को भी उनकी तरफ बहुत खींच लिया था। जिस समय कृष्णदेव नौका पर आते उस समय अन्य मछुओं के रहते हुए भी तिन्नी स्वयं ही नौका चलाती।

राजा साहब से कुछ छिपा न था। कुमार रोज जल-विहार के लिए जाते हैं और तिन्नी ही नाव चलाया करती है। यह राजा साहब ने सुन लिया था। इसलिए बात को इससे अधिक न बढ़ने देने के लिए राजा साहब बिना शिकार खेले ही एक दिन अपनी रियासत को लौट गये। जाने को तो पिता के साथ कृष्णदेव भी गये। किन्तु उनका हृदय मछुओं के झोपड़े में तिन्नी

के ही पास छूट गया था । रियासत पहुँचकर कृष्णदेव सदा उदास और न जाने किन विचारों में डूबे रहा करते । शायद उन्हें रह-रहकर मनोहर के भाग्य पर जलन होती थी या सोचते मनोहर किस प्रकार तिन्नी के पास बैठकर नाव चलाया करता था । तिन्नी कैसी घुल-मिलकर हँसती हुई उससे बातें किया करती थी । एक मामूली आदमी होकर भी मनोहर कितना सुखी है । काश ! मैं भी एक मछुआ होता और तिन्नी के पास बैठकर नाव चला सकता तो कितना सुखी होता ?

किन्तु वे कभी किसी से कुछ भी न कहते । हाँ, अब उन्हें शिकार से रुचि न थी । शतरंज के वे बहुत अच्छे खिलाड़ी थे, लेकिन अब मुहरों की ओर उनसे आँख उठाकर देखा भी न जाता । पढ़ने से भी उन्हें बड़ा प्रेम था । उनके पुस्तकालय में विद्वान लेखकों की अच्छी से अच्छी पुस्तकें थीं किन्तु उस पर अब इंचों धूल जम रही थी।

यार-दोस्त आते । घंटों छेड़-छाड़ करते, किन्तु कृष्णदेव में तिल भर का भी परिवर्तन न होता । उनके अन्तर्जगत में कितना भयंकर तूफान उठ रहा था; यह किसे मालम था । कृष्णदेव अपनी वेदना चुपचाप पी रहे थे । किन्तु उनकी भीतरी पीड़ा को उनकी कमजोरी बतला रही थी । उनका स्वास्थ्य हर रोज गिरता जा रहा था ।

पिता से पुत्र की बीमारी छिपी न थी । वे सब जानते थे । लेकिन वे चाहते थे कि बात किसी प्रकार दबी की दबी ही रह जाय । उन्हें बीच में न पड़ना पड़े । कृष्णदेव उनका

इकलौता पुत्र था। पुत्र की चिन्ता उन्हें रात-दिन बनी रहती थी। तिन्नी के हंसते हुए रूप और उसकी चंचलता ने राजा साहब को अपनी ओर न खींचा हो, सो बात न थी किन्तु थी तो वह आखिर मछुए ही की बेटी। राजा साहब उससे कृष्णदेव का विवाह करते भी तो कैसे।

एक दिन राजा साहब कृष्णदेव के कमरे में गये। उस समय वह सोये हुए थे। आँखों के पास जैसे रोते-रोते गड्ढे से पड़ गये थे। चेहरा पीला-पीला और शरीर सूखकर जैसे काँटा-सा हो रहा था। जमीन पर ही एक चटाई के ऊपर बिना तकिए के मखमली बिछौने पर सोने वाला उनका दुलारा कृष्णदेव न जाने किस चिन्ता में पड़ा-पड़ा सो गया था। राजा साहब की आँखों में आँसू आ गये। वे कुछ न बोलकर चुपचाप कृष्णदेव के कमरे से बाहर निकल आये।

—४—

दूसरे ही दिन रियासत से तिन्नी समेत चौधरी का बुलौआ हुआ। उन्हें शीघ्र से शीघ्र उपस्थित होने की आज्ञा थी और साथ ही उन्हें लेने के लिए सवारी भी आई थी। इस घटना ने सारे मुहल्ले भर में हलचल मचा दी। चौधरी बहुत घबराए। सोचा—अवश्य ही मेरे न रहने पर इस चंचल लड़की ने कोई अनुचित व्यवहार कर दिया होगा। राजा साहब जरूर नाराज हैं। नहीं तो तिन्नी समेत बुलाए जाने का और कारण ही क्या हो सकता है। मुहल्लेवाले सभी चौधरी को सीख देने आये।

अपनी-अपनी समझ के अनुसार किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। लेकिन तिन्नी का हृदय कुछ और ही बोल रहा था। तिन्नी पिता के पास मोटर पर बैठने ही वाली थी कि मनोहर ने आकर धीरे से तिन्नी से कहा :—

—"तिन्नी, कहीं राजकुमार ने तुम्हें अपनी रानी बनाने को बुलाया हो तो ?"

"कुछ तुम मुझे अपनी रानी बनाते थे, कुछ राजकुमार बनाएँगे।"

"तिन्नी तुम तो सदा ही मेरे हृदय की रानी रही हो और रहोगी। आज ऐसी बात क्यों करती हो ?"

"सो कैसे ? बिना विवाह हुए ही मैं तुम्हारी या तुम्हारे हृदय की रानी कैसे बन सकती हूँ ?" तिन्नी ने रुखाई से पूछा।

"तिन्नी ! रानी बनने के लिए विवाह ही थोड़े जरूरी है। जिसे हम प्यार करें, वही हमारी रानी !"

तिन्नी का चेहरा तमतमा गया। बोली—"धत् ! मैं ऐसी रानी नहीं बनना चाहती। ऐसी रानी से तो मछुए की बेटी ही भली।" और मनोहर के उत्तर की इंतजारी न करके पिता के पास जाकर मोटर पर बैठ गई। मोटर चल दी।

जब यह लोग रियासत में राजा साहब के महल के सामने पहुँचे, तब कुछ अँधेरा हो चला था। इनके पहुँचने की सूचना राजा साहब को दी गई। चौधरी पुत्री समेत महल के एक सूने कमरे में बुलाये गये। कमरे में राजा साहब और कृष्णदेव को छोड़कर कोई और न था। डर के मारे चौधरी की तो हुलिया बिगड़ रही

थी। किन्तु तिन्नी मन ही मन मुस्करा रही थी। पिता-पुत्री का उचित सम्मान करने के उपरांत राजा साहब ने मछुए को सम्बोधन करके कहा :—

"चौधरी हमने तुम्हें किस लिए बुलाया है, कदाचित् तुम नहीं जानते।" चौधरी भय से काँप उठे। हाथ जोड़कर बोले—

"मैं तो महराज गुलाम हूँ। सदा · · ·।" राजा साहब बात काटते हुए बोले—

—"हम तुम्हारी इस कन्या को राजकुमार के लिए चाहते हैं।"

तिन्नी होठों के भीतर मुस्कुराई और चौधरी आश्चर्य से भर गये। एक बार राजा साहब की ओर, और फिर उन्होंने तिन्नी की ओर देखा। सहसा चौधरी को इस बात पर विश्वास न हुआ। कहाँ मैं एक मामूली मछुआ और कहाँ वे एक रियासत के राजा! हमारे बीच में कभी रिश्तेदारी भी हो सकती है? फिर न जाने क्या सोचकर काँपते हुए चौधरी ने हाथ जोड़कर कहा :—

"महाराज! यह कन्या मेरी नहीं है।"

राजा साहब चौंक उठे। आश्चर्य से उन्होंने चौधरी से पूछा—

"फिर यह किसकी लड़की है?"

हाथ जोड़े ही जोड़े चौधरी बोले :—

"महाराज! पन्द्रह साल पहिले की बात है, नदी में बहुत बाढ़ आई थी। उसी बाढ़ में मेरे बुढ़ापे की लकड़ी यह कन्या मुझे मिली थी। यह एक खाट पर बहती हुई आई थी और इसके गले में एक छोटी-सी सोने की ताबीज थी।"

ताबीज का नाम सुनते ही राजा साहब को ताबीज देखने की उत्सुकता हुई। उनके मस्तिष्क में किसी ताबीज की धुंधली-सी स्मृति छा गई। पिता के आदेश से तिन्नी गले से ताबीज निकालने के लिए ताबीज की गाँठ खोलने लगी।

मछुए ने फिर कहना शुरू किया—महाराज! इस ताबीज का भी बड़ा अनोखा किस्सा है। एक बार ताबीज का धागा टूट गया। कई दिनों तक याद न रहने के कारण यह ताबीज इसे न पहिनाई जा सकी। बस, महाराज! यह तो इतनी ज्यादा बीमार पड़ी कि मरने-जीने की नौबत आ गई और फिर ताबीज पहिनाते ही बिना दवादारू के ही चंगी भी हो गई। तब से ताबीज आज तक इसके गले में ही पड़ी है।

राजा साहब को याद हो आया कि पन्द्रह साल पहले उनकी लड़की भी खेमे के अन्दर के बाढ़ में बह गई थी। जिसके गले में उन्होंने भी एक ज्योतिषी के कहने से ताबीज पहनाई थी। उन्होंने एक बार कृष्णदेव और फिर तिन्नी के मुँह की ओर देखा। उन्हें उनके मुँह में बहुत-कुछ समानता देख पड़ी। तब तक तिन्नी ने गले से ताबीज निकालकर राजा साहब के सामने रख दिया। राजकुमार का हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था। ताबीज हाथ में लेते ही राजा साहब ने 'मेरी कान्ती' कहते हुए तिन्नी को छाती से लगा लिया। यह वही ताबीज थी जिसे ज्योतिषी के कहने से राजा साहब ने पुत्री के गले में पहिनाया था।

पिता-पुत्री और भाई-बहन का यह अपूर्व सम्मिलन था। सबके आँखों में प्रेम के आँसू उमड़ आये।

—५—

अब महल के पास ही चौधरी के लिए पक्का मकान बन गया। चौधरी अपनी स्त्री समेत वहीं रहते हैं। अब उन्हें नाव नहीं चलानी पड़ती। रियासत की ओर से उनके खाने के लिए अच्छी रकम बाँध दी गई।

राजमहल में रहती हुई भी कान्ती चौधरी के घर आकर तिन्नी हो जाती है। अब भी वह चौधरी के साथ उनकी थाली में बैठकर चौधराइन के हाथ की मोटी-मोटी रोटियाँ खा जाती है।

तिन्नी को बहिन के रूप में पा कृष्णदेव को कम प्रसन्नता न थी। वह तिन्नी का साथ चाहते थे। चाहे वह पत्नी के रूप में हो या बहन के।

**प्रश्न**

१—क्या आपने कहीं कोई ऐसी दूसरी कहानी पढ़ी या सुनी है जिसमें अंत में प्रेमिका प्रेमी की सगी बहिन प्रमाणित हो गई हो ?

२—तिन्नी के प्रति कृष्णदेव का प्रेम त्यागमय था या मनोहर का ?

३—कृष्णदेव के पिता का चरित्र-चित्रण कीजिए।

४—इस कहानी की रचना में लेखिका का क्या उद्देश्य था और उसको इसमें कहाँ तक सफलता मिली है ?

———

## ७. उसकी माँ

[बेचन शर्मा 'उग्र']

जिस प्रकार उग्रजी की भाषा में अति नूतनता, अद्वितीय मौलिकता, तेजस्विता तथा क्रान्तिमत्ता का अविरल प्रवाह रहता है उसी प्रकार उनके भावों और विचारों में भी प्रगति, प्रखरता एवं क्रान्ति के दर्शन मिलते हैं। वे अपने व्यक्तिगत जीवन में बाल्यकाल से ही क्रांतिकारी रहे हैं और अपने प्रगाढ़ देश-प्रेम के कारण इन्हें बहुत कुछ भोगना, सहना पड़ा है। ज्वलन्त देशप्रेम, निर्भीक स्वभाव, उत्कट स्पष्ट वादिता एवं निश्छल व्यवहार उग्रजी के अद्वितीय व्यक्तित्व के प्रमुख अंग हैं। उनकी कृतियों में उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप मिलती है। "उसकी माँ" कहानी का लाल कुछ-कुछ उग्रजी का ही प्रतिरूप है। यही कारण है कि वह इतना सजीव चरित्र बन सका है। अपने प्रारम्भिक दिनों में उग्रजी, महान् क्रांतिकारी शच्चीन्द्रनाथ सान्याल के सम्पर्क में आकर कुछ दिनों के लिए उनके दल में शामिल हुए थे। उन दिनों वे कर्मणा जो न हो सके या न कर सके थे, उसे मनसा सम्पन्न करके इस अमर कहानी के रूप में माँ भारती को उपहार दिया है। लाल के निर्माण में भारत के अमर क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद के व्यक्तित्व की भी छाप स्पष्ट है। भाषा की सजीवता, भावनाओं की तीव्रता, चरित्रों की कर्मठता, ध्येय की महत्ता तथा वेदनाओं की सकरुणता के योग से यह कहानी इतनी महान् बन गई है कि स्वयं उग्रजी की अन्य समस्त क्रांतिकारी कृतियों और हिन्दी के अन्य कहानीकारों की क्रांतिकारी कहानियों में इसे सर्वोपरि मानने में किसी को संकोच नहीं हो सकता। लाल का मोहक अल्हड़पन और अविचल देश-प्रेम, लाल की माँ का मूक बलिदान, लाल के जमींदार अभिभावक की निर्लज्ज कायरता और हृदयहीन कापुरुषता तथा

पुलिस और शासन की स्पन्दन रहित पाशविकता का अत्यन्त उपयुक्त भाषा-शैली में अद्भुत चित्रण हुआ है। इस कहानी को प्रथम बार पढ़ने वाले तरुणों के मन पर कई दिनों तक एक नशा-सा छाया रहता है, और पिछले तीस पैंतीस वर्षों में इसे पढ़ने वाले तरुणों में से हजारों मातृभूमि की सेवा में अपने को अर्पित करने का संकल्प लेते रहे हैं। इस कहानी का यह सबसे बड़ी विशेषता है।



दोपहर को जरा आराम करके उठा था। अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में खड़ा-खड़ा, धीरे-धीरे सिगार पी रहा था और बड़ी-बड़ी अलमारियों में सजे पुस्तकालय की ओर निहार रहा था। किसी महान् लेखक की कोई महान् कृति उनमें से निकाल कर देखने की बात सोच रहा था। मगर, पुस्तकालय के एक सिरे से लेकर दूसरे तक मुझे महान-ही-महान नजर आये। कहीं गेटे[१], कहीं रूसो[२], कहीं मेजिनी[३], कहीं नित्शे[४], कहीं शेक्सपियर, कहीं टाल्सटाय, कहीं ह्यूगो[५], मुपासाँ[६], कहीं डिकिन्स, स्पेन्सर[७], मेकाले, मिल्टन, मोलियर—उफ्! इधर-से-इधर तक एक-से-एक महान ही तो थे। आखिर मैं किसके साथ चन्द मिनट मन-बहलाव करूँ, यह निश्चय ही न हो सका। महानों के नाम ही पढ़ते-पढ़ते परेशान-सा हो गया।

---

१. जर्मनी के प्रसिद्ध कवि, २. फ्रांस के क्रान्तिकारी विचारक एवं लेखक, ३. इटली के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लेखक, ४. जर्मन दार्शनिक, ५. फ्रांस का अमर उपन्यासकार, ६. फ्रांस का सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखक, ७. इंगलैण्ड का दार्शनिक।

इतने में मोटर का भों-भों सुनाई पड़ा। खिड़की से झाँका तो सुर्मई रंग की कोई 'फियेट' गाड़ी दिखाई पड़ी। मैं सोचने लगा——शायद कोई मित्र पधारे हैं, अच्छा ही है। महानों से जान बची।

जब नौकर नें सलामकर आनेवाले का कार्ड दिया, तब मैं कुछ घबराया। उस पर शहर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट का नाम छपा था। ऐसे बे-वक्त यह कैसे आये?

पुलिस-पति भीतर आये। मैंने हाथ मिलाकर एक चक्कर खाने वाली गद्दीदार कुर्सी पर उन्हें आसन दिया। वह व्यापारिक मुस्कराहट से लैस होकर बोले——

"इस अचानक आगमन के लिए आप मुझे क्षमा करें।"

"आज्ञा हो।"——मैंने भी नम्रता से कहा।

उन्होंने पाकेट से डायरी निकाली, डायरी से एक तस्वीर——"देखिए इसे। जरा बताइए तो आप पहचानते हैं इसको?"

"हाँ पहचानता तो हूँ।" जरा सहमते हुए मैंने बताया।

"इसके बारे में मुझे आपसे कुछ पूछना है।"

"पूछिए।"

"इसका नाम क्या है?"

"लाल! मैं इसी नाम से बचपन ही से इसे पुकारता आ रहा हूँ। मगर यह पुकारने का नाम है। एक नाम कोई और है, सो मुझे स्मरण नहीं।"

"कहाँ रहता है यह?"——सुपरिंटेंडेंट ने पुलिस की धूर्त-दृष्टि से मेरी ओर देखकर पूछा।

"मेरे बँगले के ठीक सामने, एक दोमंजिला कच्चा-पक्का घर है, उसी में वह रहता है। वह है और उसकी बूढ़ी माँ।"

"बूढ़ी का नाम क्या है?"

"जानकी।"

"और कोई नहीं है क्या इसके परिवार में? दोनों का पालन-पोषण कौन करता है?"

"सात-आठ वर्ष हुए, लाल के पिता का देहान्त हो गया। अब उस परिवार में वह और उसकी माता ही बचे हैं। उसका पिता जब तक जीवित रहा बराबर मेरी जमींदारी का मुख्य मैनेजर रहा। उसका नाम रामनाथ था। वही मेरे पास कुछ हजार रुपये जमा कर गया था, जिससे अब तक उनका खरचा-वरचा चल रहा है। लड़का कालेज में पढ़ रहा है। जानकी को आशा है, वह साल-दो-साल बाद कमाने और परिवार को सँभा-लेने लगेगा। मगर—क्षमा कीजिए, क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि आप उसके बारे में क्यों इतनी पूछताछ कर रहे हैं?"

"यह तो मैं आपको नहीं बता सकता, मगर इतना आप समझ लें, यह सरकारी काम है। इसीलिए आज मैंने आपको इतनी तकलीफ दी है।"

"अजी, इसमें तकलीफ की क्या बात है। हम तो सातपुश्त से सरकार के फरमाबरदार हैं। और कुछ आज्ञा ........।"

"एक बात और"—पुलिस-पति ने गम्भीरता से धीरे से कहा—"मैं मित्रता से आपसे निवेदन करता हूँ। आप इस

परिवार से जरा सावधान और दूर रहें। फिलहाल इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना।"

—२—

"लाल की माँ !" एक दिन जानकी को बुलाकर मैंने समझाया—"तुम्हारा लाल आजकल क्या पाजीपना करता है ? तुम उसे केवल प्यार-दुलार ही करती हो न ? हूँ, भोगोगी।"

"क्या है बाबू ?" उसने कहा—"लाल क्या करता है ? मैं तो उसे कोई बुरा काम करते नहीं देखती।"

"बिना किये ही तो सरकार किसी के पीछे पड़ती नहीं ? हाँ लाल की माँ ! बड़ी धर्मात्मा, विवेकी और न्यायी सरकार यह है। जरूर तुम्हारा लाल कुछ करता होगा।"

"माँ ! माँ ! पुकारता हुआ उसी समय लाल भी आया। लम्बा, सुडौल, सुन्दर, तेजस्वी।

"माँ !" उसने मुझे नमस्कार कर जानकी से कहा—"तू यहाँ भाग आयी है ? चल तो, मेरे कई सहपाठी वहाँ खड़े हैं। उन्हें चटपट कुछ जलपान करा दे। फिर हम घूमने जायँगे।"

"अरे !" जानकी के चेहरे की झुर्रियाँ चमकने लगीं, काँपने लगी उसे देखकर—"तू, आ गया, लाल ! चलती हूँ भैये ! पर देख तो, तेरे चाचा क्या शिकायत कर रहे हैं। तू क्या पाजीपना करता है, बेटा ?"

"क्या है चाचाजी !" उसने सविनय, सुमधुर स्वर से मुझसे पूछा—"मैंने क्या अपराध किया है ?"

"मैं तुमसे नाराज हूँ लाल !"—मैंने गम्भीर स्वर में कहा।

"क्यों चाचाजी ?"

"तुम बहुत बुरा करते हो, जो सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र करने वालों के साथी हो। हाँ, हाँ,—तुम हो। देखो लाल की माँ, इसके चेहरे का रंग उड़ गया। यह सोचकर कि यह खबर मुझे कैसे मिली ?"

सचमुच एक बार उसका खिला हुआ रंग जरा मुरझा गया, मेरी बातों से। पर तुरन्त ही वह सँभला।

"आपने गलत सुना चाचाजी ! मैं किसी षड्यन्त्र में नहीं। हाँ, मेरे विचार स्वतन्त्र अवश्य हैं। मैं जरूरत-बेजरूरत जिस-तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ। देश की दुरवस्था पर, उबल उठता हूँ, इस पशुहृदया परतन्त्रता पर।"

"तुम्हारी ही बात सही, तुम षड्यन्त्र में नहीं, विद्रोह में नहीं, पर यह बक-बक क्यों ? इससे फायदा ? तुम्हारी इस बक-बक से न तो देश की दुर्दशा दूर होगी और न उसकी पराधीनता। तुम्हारा काम पढ़ना है—पढ़ो। इसके बाद कर्म करना होगा, परिवार और देश की मर्यादा बचानी होगी। तुम पहले अपने घर का उद्धार तो कर लो, तब सरकार के सुधार का विचार करना।"

उसने नम्रता से कहा—"चाचाजी, क्षमा कीजिए। इस विषय में मैं आपसे विवाद करना नहीं चाहता।"

"चाहना होगा, विवाद करना होगा। मैं केवल चाचाजी नहीं, तुम्हारा बहुत-कुछ हूँ। तुम्हें देखते ही मेरी आँखों के सामने रामनाथ नाचने लगते हैं। तुम्हारी बूढ़ी माँ घूमने लगती है। भला मैं तुम्हें बेहाथ होने दे सकता हूँ। इस भरोसे न रहना।"

"इस पराधीनता के विवाद में चाचाजी, मैं और आप दो भिन्न सिरों पर हैं। आप कट्टर राजभक्त, मैं कट्टर राज-विद्रोही। आप पहली बात को, उचित समझते हैं, कुछ कारणों से; मैं दूसरी को, दूसरे कारणों से। आप अपना पथ छोड़ नहीं सकते--अपनी प्यारी कल्पनाओं के लिए। मैं अपना भी नहीं छोड़ सकता।"

"तुम्हारी कल्पनाएँ क्या हैं? सुनूँ भी जरा, मैं भी जान लूँ कि अबके लड़के, कालेज की गर्दन तक पहुँचते-पहुँचते कैसे-कैसे हवाई किले उठाने के सपने देखने लगते हैं। जरा मैं भी सुनूँ—बेटा!"

"मेरी कल्पना यह है कि जो व्यक्ति, समाज या राष्ट्र किसी अन्य व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो—उसका सर्वनाश हो जाय।"

जानकी उठकर बाहर चली—"अरे तू तो जमकर चाचा से जूझने लगा। वहाँ चार बच्चे बेचारे दरवाजे पर खड़े होंगे। लड़ तू, मैं जाती हूँ।" उसने मुझसे कहा—"समझा दो बाबू! मैं तो आप ही कुछ नहीं समझती, फिर इसे क्या समझाऊँगी।" उसने फिर लाल की ओर देखा—"चाचा जो कहें, मान जा बेटा! यह तेरे भले ही की कहेंगे।"

वह बेचारी, कमर झुकाये उस साठ बरस की वय में भी घूँघट सँभाले, चली गई। उस दिन उसने मेरी और लाल की बातों की गंभीरता नहीं समझी।

"मेरी कल्पना यह है कि......" उत्तेजित स्वर से लाल ने कहा—"ऐसे दुष्ट, नाशक व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के सर्वनाश में मेरा भी हाथ हो।"

"तुम्हारे हाथ दुर्बल हैं उनसे, जिनसे तुम पंजा लेने जा रहे हो। चरर-मरर हो उठेंगे, नष्ट हो जायँगे।"

"चाचाजी, नष्ट हो जाना तो यहाँ का नियम है। जो सँवारा गया है, वह बिगड़े ही गा। हमें दुर्बलता के डर से अपना काम नहीं रोकना चाहिए। कर्म के समय हमारी भुजाएँ दुर्बल नहीं, भगवान् की सहस्र भुजाओं की सखी हैं।"

"तो तुम क्या करना चाहते हो?"

"जो भी मुझसे हो सकेगा, करूँगा।"

"षड्यन्त्र····?"

"जरूरत पड़ी तो जरूर···।"

"विद्रोह··· ?"

"हाँ, अवश्य····!"

"हत्या····?"

"हाँ--हाँ—हाँ····!"

"बेटा, तुम्हारा माथा, न जाने कौन किताब पढ़ते-पढ़ते, बिगड़ रहा है। सावधान!"

—३—

मेरी धर्मपत्नी और लाल की माँ; एक दिन बैठी हुई बातें कर रही थीं कि मैं पहुँच गया। कुछ पूछने के लिए, कई दिनों से, मैं उसकी तलाश में था।

"क्यों लाल की माँ! लाल के साथ किसके लड़के आते हैं, तुम्हारे घर में ?"

"मैं क्या जानूँ बाबू !" उसने सरलता से कहा--"मगर वे सभी मेरे लाल ही की तरह प्यारे मुझे दिखते हैं। सब लापरवाह। वे इतना हँसते, गाते और हो-हल्ला मचाते हैं कि मैं मुग्ध हो जाती हूँ।"

मैंने एक ठण्डी साँस ली--"हूँ, ठीक कहती हो। वे बातें कैसी करते हैं। कुछ समझ पाती हो ?"

"बाबू, वे लाल की बैठक में बैठते हैं। कभी-कभी जब मैं उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने जाती हूँ, तब वे, बड़े प्रेम से, मुझे 'माँ' कहते हैं। मेरी छाती फूल उठती है--मानो वे मेरे ही बच्चे हैं।"

"हूँ···" मैंने फिर साँस ली।

"एक लड़का उनमें बहुत ही हँसोड़ है। खूब तगड़ा और बली दीखता है। लाल कहता था, वह डण्डे से लड़ने में, दौड़ने में, घूँसेबाजी में, छेड़खानी करने और हो-हो, हा-हा कर हँसने में समूचे कालेज में फर्स्ट है। उसी लड़के ने एक दिन, जब मैं उन्हें हलवा परस रही थी, मेरे मुँह की ओर देखकर कहा--माँ! तू तो ठीक भारत-माता-सी लगती है। तू बूढ़ी, वह बूढ़ी। उसका हिमालय उजला है, तेरे केश। हाँ, मैं नक्शे से साबित करता हूँ--तू भारत-माता है। सर तेरा हिमालय, माथे की दोनों गहरी बड़ी रेखाएँ गंगा और यमुना। नाक विन्ध्याचल, ठुड्ढी कन्याकुमारी तथा छोटी-बड़ी झुर्रियाँ-रेखाएँ भिन्न-भिन्न पहाड़ और नदियाँ हैं। जरा पास आ मेरे। तेरे केशों को पीछे से

आगे—बाएँ कन्धे पर लहरा दूँ। वह बर्मा बन जायगा। बिना उसके भारत-माता का श्रृंगार न होगा।"

जानकी उस लड़के की बातें सोच गद्‌गद हो उठी—"बाबू, ऐसा ढीठ लड़का। सारे बच्चे हँसते रहे और उसने मुझे पकड़ मेरे बालों को बाहर कर अपना बर्मा तैयार कर लिया। कहने लगा—देख, तेरा यह दाहिना कान कच्छ की खाड़ी है—बम्बई के आगेवाली; और यह बायाँ—बंगाल की खाड़ी। माँ! तू सीधा मुँह करके जरा खड़ी हो। मैं तेरी ठुड्‌ढी के नीचे, उससे दो अंगुल के फासले पर हाथ जोड़कर घुटनों पर बैठता हूँ। दाढ़ी मेरी कन्याकुमारी—हा हा हा हा!—और मेरे जुड़े, जरा तिरछे, हाथ सिलोन—लङ्का!—हा हा हा हा!! बोल, भारतमाता की जय!

सब लड़के ठहाका लगाकर हँसने लगे। वह घुटने टेककर हाथ जोड़कर, मेरे पाँवों के पास बैठ गया। मैं हक्की-बक्की-सी हँसने वालों का मुँह निरखने लगी। बाबू, वे सभी बच्चे मेरे 'लाल' हैं, सभी मुझे 'माँ'—गाकर—कहते हैं।"

उसकी सरलता मेरी आँखों में आँसू बनकर छा गई। मैंने पूछा—"लाल की माँ! और भी वे कुछ बातें करते हैं। लड़ने की, झगड़ने की, गोला-गोली या बन्दूक की?"

"अरे बाबू" उसने मुस्कराकर कहा—"वे सभी बातें करते हैं। उनकी बातों का कोई मतलब थोड़े ही होता है। सब जवान हैं, लापरवाह हैं, जो मुँह में आता है, बकते हैं। कभी-कभी तो पागलों-सी बातें कहते हैं। महीना भर पहले एक दिन लड़के बहुत उत्तेजित थे। वे जब बैठक में बैठकर गलचौर करने लगते

हैं, तब कभी-कभी उनका पागलपन सुनने के लोभ से, मैं दरवाजे से सट और छिपकर खड़ी हो जाती हूँ ।

"न जाने कहाँ लड़कों को सरकार पकड़ रही है । मालूम नहीं, पकड़ती भी है या वे यों ही गप हाँकते थे । मगर उस दिन वे यही बक रहे थे । कहते थे--'पुलीस वाले केवल सन्देह पर भले आदमियों के बच्चों को त्रास देते हैं, मारते हैं, सताते हैं, यह अत्याचारी पुलीस की नीचता है । ऐसी नीच शासन-प्रणाली को स्वीकार करना अपने धर्म को, कर्म को, आत्मा को, परमात्मा को भुलाना है—धीरे-धीरे घुलाना, मिटाना है ।'

"एक ने उत्तेजित भाव से कहा—'अजी, ये परदेशी कौन लगते हैं हमारे; हमें बरबस राज-भक्त बनाये रखने के लिए हमारी छाती पर तोप का मुँह लगाये; अड़े और खड़े हैं । उफ ! इस देश के लोगों को हिये की आँखें मुँद गई हैं, तभी तो इतने जुल्मों पर भी आदमी-आदमी से डरता है । ये लोग शरीर की रक्षा के लिए, अपनी-अपनी आत्मा की चिता सँवारते फिरते हैं । नाश हो इस परतन्त्रतावाद का ।'

"दूसरे ने कहा—'लोग ज्ञानी न हो सकें, इसलिए इस सरकार ने हमारे पढ़ने-लिखने के साधनों को अज्ञान से भर रखा है । लोग वीर और स्वाधीन न हो सकें इसलिए अपमानजनक और मनुष्यता-नीति-मर्दक कानून गढ़े हैं। गरीबों को चूसकर सेना के नाम पर पले हुए पशुओं को शराब से, कबाब से मोटा-ताजा रखती है, यह सरकार । धीरे-धीरे जोंक की तरह हमारे देश का धर्म, प्राण और धन चूसती चली जा रही है; यह लूटक-

शासन-प्रणाली । नाश हो इस प्रणाली का ! इस प्रणाली की तस्वीर—सरकार का !'

"तीसरा, वही बँगड़, बोला—'सबसे बुरी बात है, जो सरकार रोब से—सत्तावनी रोब से—धाक से, धाँधली से, धुआँ से हम पर शासन करती है। यह आँखें खोलते ही कुचल-कुचल कर हमें दब्बू, कायर, हतवीर्य बनाती है। और किसलिए ? जरा सोचो तो, मुट्ठी-भर मनुष्यों को अरुण, वरुण और कुबेर बनाये रखने के लिए, मुटठी-भर मनचले सारे संसार की मनुष्यता की मिट्टी पलीत करें, परमात्मा-प्रदत्त स्वाधीनता का संहार करें—छिः ! नाश हो ऐसे मनचलों का !'

"ऐसे ही अन्ट-सन्ट ये बातूनी बका करते हैं, बाबू ! जभी चार छोकरे जुड़े, तभी यही चर्चा । लाल के साथियों का मिजाज भी, उसी-सा, अल्हड़-बिल्हड़ मुझे मालूम पड़ता है । वे लड़के ज्यों-ज्यों पढ़ते जा रहे हैं, त्यों-त्यों बकबक में बढ़ते जा रहे हैं ।"

"यह बुरा है, लाल की माँ !" मैंने गहरी साँस ली ।

—४—

जमींदारी के कुछ जरूरी काम से चार-पाँच दिनों के लिए बाहर गया था । लौटने पर, बँगले में घुसने के पूर्व, लाल के दरवाजे पर जो नजर पड़ी तो वहाँ एक भयानक सन्नाटा-सा नजर आया । जैसे घर उदास हो, रोता हो ।

भीतर आने पर, मेरी धर्मपत्नी मेरे सामने उदास-मुख खड़ी हो गयी !

"तुमने सुना ?"

"नहीं तो, कौन-सी बात ?"

"लाल की, माँ पर भयानक विपत्ति टूट पड़ी है ।" मैं कुछ-कुछ समझ गया, फिर भी विस्तृत विवरण जानने को उत्सुक हो उठा—"क्या हुआ ? जरा साफ-साफ बताओ ।"

"वही हुआ, जिसका तुम्हें भय था। कल पुलीस की एक पलटन ने लाल का घर घेर लिया था । बारह घंटे तक तलाशी हुई ! लाल, उसके बारह-पन्द्रह साथी, सभी पकड़ लिए गए हैं । सभी लड़कों के घरों की तलाशी हुई है। सबके घर से भयानक-भयानक चीजें निकली हैं ।"

"लाल के यहाँ ?"

"उसके यहाँ भी दो पिस्तौल, बहुत-से कारतूस और पत्र पाए गए हैं। सुना है, उन पर हत्या, षड्यन्त्र, सरकारी राज्य उलटने की चेष्टा आदि अपराध लगाए गए हैं ।"

"हूँ" मैंने ठंडी साँस ली—"मैं तो महीनों से चिल्ला रहा था कि यह लौंडा धोखा देगा । अब वह बूढ़ी बेचारी मरी। वह कहाँ है । तलाशी के बाद तुम्हारे पास आई थी ?"

"जानकी मेरे पास कहाँ आई। बुलवाने पर भी कल नकार गयी। नौकर से कहलाया—पराठे बना रही हूँ, हलुआ-तरकारी अभी बनाना है । नहीं तो वे बिल्हड़ बच्चे हवालात में मुरझा न जायँगे । जेलवाले और उत्साही बच्चों की दुश्मन यह सरकार उन्हें भूखों मार डालेगी, मगर मेरे जीते जी यह होने का ।"

"वह पागल है, भोगेगी ।" मैं दु:ख से टूटकर एक चारपाई पर भहरा पड़ा । मुझे लाल के कर्मों पर घोर खेद हुआ ।

इसके बाद, प्राय: एक वर्ष तक वह मुकदमा चला । कोई भी अदालत के कागज उलटकर देख सकता है । सी० आई० डी० ने--और उसके मुख सरकारी वकील ने--उन लड़कों पर बड़े-बड़े दोषारोप किए । उन्होंने चारों ओर गुप्त समितियाँ स्थापित की थीं, उनके खर्चे और प्रचार के लिए डाके डाले थे, सरकारी अधिकारियों के यहाँ रात में छापा मारकर शस्त्र एकत्र किए थे, पलटन में उन्होंने बगावत फैलाने का प्रयत्न किया था । उन्होंने न जाने कहाँ, न जाने किस पुलीस के दरोगा को मारा था, न जाने किस पुलीस सुपरिंटेंडेंट को ! ये सभी बातें सरकार की ओर से प्रमाणित की गयीं ।

उधर उन लड़कों की पीठ पर कौन था ? प्राय: कोई नहीं । सरकार की डर के मारे पहले तो कोई वकील ही उन्हें नहीं मिल रहा था, फिर एक बेचारा मिला भी; तो 'नहीं' का भाई । हाँ उनकी पैरवी में सबसे अधिक परेशान वह बूढ़ी रहा करती । वह सुबह-शाम उन बच्चों को--लोटा, थाली, जेवर आदि बेच-बेचकर भोजन पहुँचाती । फिर वकीलों के यहाँ जा कर दाँत निपोरती, गिड़गिड़ाती, कहती--

"सब झूठ है । न जाने कहाँ से पुलीसवालों ने ऐसी-ऐसी चीजें हमारे घरों में पैदा कर दी हैं । वे लड़के केवल बातूनी हैं--हाँ, मैं भगवान् का चरण छूकर कह सकती हूँ । तुम जेल में

जाकर देख आओ वकील बाबू ! भला वे फूल-से बच्चे हत्या कर सकते हैं ?"

उसका तन सूखकर काँटा हो गया, कमर झुककर धनुष-सी हो गयी, आँखें निस्तेज; मगर उन बच्चों के लिए दौड़ना, हाय-हाय करना, उसने बन्द न किया। कभी-कभी सरकारी नौकर, पुलीस या वार्डर, झुँझलाकर उसे झिड़क देते, धकिया देते। तब वह खड़ी हो जाती, छड़ी के सहारे कमर सीधी कर—"अरे, अरे ! तुम कैसे जवान हो, कैसे आदमी हो। मैं तो उन भोले बच्चों के लिए दौड़ती-मरती हूँ और तुम मुझे धक्के दे रहे हो ! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, भैया ?"

उसको अन्त तक यही विश्वास रहा कि यह सब पुलीस की चालबाजी है। अदालत में जब दूध का दूध और पानी का पानी किया जायगा, तब वे बच्चे जरूर बे-दाग छूट जायँगे। वे फिर उसके घर में लाल के साथ आवेंगे। हा-हा-हो-हो करेंगे, उसे 'माँ' कहकर पुकारेंगे।

मगर, उस दिन उसकी कमर टूट गयी, जिस दिन ऊँची अदालत ने भी, लाल को, उस बँगड़ लठैत को तथा दो और लड़कों को फाँसी और दस को दस-दस वर्ष तक की कड़ी सजाएँ दीं।

वह अदालत के बाहर झुकी खड़ी थी। बच्चे बेड़ियाँ बजाते, मस्ती से झूमते, बाहर आये। सबसे पहले उस बँगड़ की नजर उस पर पड़ी—

"माँ !" वह मुस्कराया—"अरे हमें तो हलुआ खिला-खिला कर तूने गधे-सा तगड़ा कर दिया है, ऐसे कि फाँसी की रस्सी

टूट जाय और हम अमर के अमर बने रहें। मगर तू स्वयं सूखकर काँटा हो गई। क्यों पगली तेरे लिए घर में खाना नहीं है क्या?"

"माँ?" उसके लाल ने कहा—"तू भी जल्द वहीं आना, जहाँ हम लोग जा रहे हैं। यहाँ से थोड़ी देर का रास्ता है माँ! एक साँस में पहुँचेगी। वहीं हम स्वतन्त्रता से मिलेंगे। तेरी गोद में खेलेंगे। तुझे कन्धे पर उठाकर इधर-से-उधर दौड़ते फिरेंगे। समझती है? वहाँ बड़ा आनन्द है!"

"आवेगी न माँ?" बँगड़ ने पूछा।

"आवेगी न माँ?" लाल ने पूछा।

"आवेगी न माँ?" दण्ड-प्राप्त दो दूसरे लड़कों ने भी पूछा। और वह उनका मुँह ताकती रही—"तुम कहाँ जाओगे पागलो?"

जब से लाल और उनके साथी पकड़े गए, तब से शहर या मुहल्ले का कोई भी आदमी लाल की माँ से मिलने में डरता था। उसे रास्ते में देखकर जान-पहिचानी बगलें झाँकने लगते। मेरा स्वयं अपार प्रेम था उस बेचारी बूढ़ी पर; मगर मैं भी बराबर दूर ही रहा। कौन अपनी गर्दन मुसीबत में डालता, विद्रोही की माँ से सम्बन्ध रखकर?

उस दिन, ब्यालू करने के बाद कुछ देर के लिए पुस्तकालय वाले कमरे में गया। वहीं, किसी महान् लेखक की कोई महान् कृति क्षण भर देखने की लालच से, मैंने मेजिनी की एक जिल्द निकालकर उसे खोला। उसके पहले ही पन्ने पर पेंसिल की लिखावट देखकर चौंका। ध्यान देने पर पता चला, यह लाल का

हस्ताक्षर था। मुझे याद पड़ गई। तीन बरस पूर्व, उस पुस्तक को मुझसे माँगकर, उस लड़के ने पढ़ा था।

एक बार मेरे मन में बड़ा मोह उत्पन्न हुआ, उस लड़के के लिए। उसके वफादार पिता रामनाथ की दिव्य और स्वर्गीय तस्वीर मेरी आँखों के आगे नाच गई। लाल की माँ पर उस पाजी के सिद्धान्तों, विचारों या आचरणों के कारण जो वज्रपात हुआ था, उसकी एक ठेस मुझे भी उसके हस्ताक्षर को देखते ही लगी। मेरे मुँह से एक गम्भीर, लाचार, दुर्बल साँस निकलकर रह गई।

पर, दूसरे ही क्षण पुलीस सुपरिंटेंडेंट का ध्यान आया। उसकी भूरी, सुहावनी, भयावनी आँखें मेरी, आप सुखी तो जग सुखी आँखों में वैसे ही चमक गईं; जैसे ऊजड़ गाँव के सिवान में कभी-कभी भुतही चिनगारी चमक जाया करती है। उसके रूखे फौलादी हाथ—जिसमें लाल की तस्वीर थी—मानो मेरी गर्दन चाँपने लगे। मैं मेज पर से 'इरेजर' (रबर) उठाकर उस पुस्तक पर से उसका नाम उधेड़ने लगा।

उसी समय मेरी पत्नी के साथ लाल की माँ वहाँ आई। उसके हाथ में एक पत्र था।

"अरे!" मैं अपने को रोक न सका—"लाल की माँ! तुम तो बिल्कुल पीली पड़ गई हो। तुम इस तरह मेरी ओर निहारती हो, मानो कुछ देख ही नहीं रही हो। यह, हाथ में क्या है?"

उसने, चुपचाप, पत्र मेरे हाथ में दे दिया। मैंने देखा, उस पर ... जेल की मुहर थी। सजा सुनाने के बाद वह वहीं भेज

दिया गया था। मैं पत्र निकालकर पढ़ने लगा। वह उसकी अन्तिम चिट्ठी थी; मैंने कलेजा रूखा कर, उसे जोर से पढ़ दिया--

"माँ !

जिस दिन तुम्हें यह पत्र मिलेगा उसके ठीक सबेरे मैं, बाल अरुण के किरण-रथ पर चढ़कर, उस ओर चला जाऊँगा। मैं चाहता तो अन्त समय तुमसे मिल सकता था; मगर इससे क्या फायदा ? मुझे विश्वास है, तुम मेरी जन्म-जन्मान्तर की जननी हो, और रहोगी ! मैं तुमसे दूर कहाँ जा सकता हूँ ? माँ ! जब तक पवन साँस लेता है, सूर्य चमकता है, समुद्र लहराता है, तब तक कौन मुझे तुम्हारी करुणामयी गोद से दूर खींच सकता है ?

दिवाकर थमा रहेगा; अरुण रथ लिये जमा रहेगा; मैं बँगड़ वह-वह सभी तेरे इन्तजार में रहेंगे।

हम मिले थे, मिले हैं, मिलेंगे--हाँ, माँ ! तेरा--'लाल'।"

काँपते हाथ से, पढ़ने के बाद पत्र को मैंने उस भयानक लिफाफे में भर दिया। मेरी पत्नी की विकलता हिचकियों पर चढ़कर कमरे को करुणा से कँपाने लगी। मगर वह जानकी ज्यों की त्यों लकड़ी पर झुकी, पूरी खुली और भावहीन आँखों से मेरी ओर देखती रही। मानो, वह उस कमरे में थी ही नहीं।

क्षण भर बाद हाथ बढ़ाकर, मौन भाषा में उसने पत्र माँगा। और फिर बिना कुछ कहे कमरे के--घर के--फाटक के बाहर हो गई। डुगुर-डुगुर लाठी टेकती हुई।

इसके बाद शून्य-सा होकर मैं धम से कुर्सी पर गिर पड़ा। माथा चक्कर खाने लगा। उस पाजी लड़के के लिए नहीं, इस

सरकार की क्रूरता के लिए भी नहीं——उस बेचारी, भोली, बूढ़ी जानकी——लाल की माँ——के लिए। आह ! वह कैसी स्तब्ध थी, उतनी स्तब्धता किसी दिन प्रकृति को मिलती, तो आँधी आ जाती। समुद्र पाता तो बौखला उठता।

जब एक का घण्टा बजा, मैं जरा सगबगाया। ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानो हरारत पैदा हो गयी है। माथे में, छाती में, रग-रग में। पत्नी ने आकर कहा——"बैठे ही रहोगे, सोओगे नहीं ?" मैंने इशारे से उन्हें जाने को कहा।

फिर, मेजिनी की जिल्द पर नजर गयी। उसके ऊपर पड़े रबर पर भी। फिर अपने सुखों की, जमींदारी की, धनिक जीवन की और उस पुलीस अधिकारी निर्दय, नीरस, निस्सार आँखों की स्मृति कलेजे में कम्पन कर गई। फिर रबर उठाकर, मैंने उस पाजी का पेंसिल-खचित नाम, पुस्तक की छाती पर से मिटा डालना चाहा। "माँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ !"

मुझे सुनाई पड़ा। ऐसा लगा, गोया लाल की माँ कराह रही है। मैं रबर हाथ में लिये; दहलते दिल से, खिड़की की ओर बढ़ा, लाल के घर की ओर देखने के लिए। पर, चारों ओर अंधकार था, कुछ नहीं दिखाई पड़ा। कान लगाने पर कुछ सुनाई भी नहीं पड़ा। मैं सोचने लगा, भ्रम होगा। वह अगर कराहती होती तो एकाध आवाज और अवश्य सुनाई पड़ती। वह कराहने वाली औरत है भी नहीं। रामनाथ के मरने पर भी उस तरह नहीं घिघियाई थी, जैसे साधारण स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर तड़पा करती हैं।

मैं पुनः उसी को सोचने लगा। वह उस नालायक के लिए क्या नहीं करती थी, खिलौने की तरह, आराध्य की तरह, उसे दुलारती और सँवारती फिरती थी, पर आह रे छोकरे! "माँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ!"

फिर वही आवाज! जरूर जानकी रो रही है, वैसे ही जैसे कुर्बानी के पूर्व गाय रोवे। जरूर वही विकल, व्यथित, विवश बिलख रही है। हाय री माँ, अभागिनी वैसे ही पुकार रही है, जैसे वह पाजी गाकर, मचलकर, स्वर को खींचकर उसे पुकारता था।

अँधेरा धूमिल हुआ, फीका पड़ा, मिट चला; उषा पीली हुई, लाल हुई, अरुण रथ लेकर वहाँ--क्षितिज के उस छोर पर--आकर पवित्र मन से खड़ा हो गया। मुझे लाल के पत्र की याद आ गई। "माँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ ाँ!"

मानो, लाल पुकार रहा था; मानो, जानकी प्रतिध्वनि की तरह उसी पुकार को गा रही थी। मेरी छाती धक्-धक् करने लगी। मैंने नौकर को पुकार कर कहा--

"देखो तो, लाल की माँ क्या कर रही है?"

जब वह लौटकर आया तब मैं--एक बार पुनः मेज और मेजिनी के सामने खड़ा था। हाथ में रबर लिये--उसी उद्देश्य से। उसने घबड़ाए स्वर में कहा--

"हुजूर! उनकी तो अजीब हालत है। घर में ताला पड़ा है और वह दरवाजे पर पाँव पसारे हाथ में कोई चिट्ठी लिये, मुँह खोले, मरी बैठी हैं। हाँ, सरकार! विश्वास मानिए; वह मर गई हैं। साँस बन्द है--आँखें खुली हैं।"

## प्रश्न

१—"उसकी माँ" शीर्षक कहानी पढ़कर आपके मन में कौन-कौन से विचार उठते हैं ?

२—कहानी में वर्णित "माँ" के सम्बन्ध में अपनी भावनायें श्रद्धांजलि के रूप में आप कैसे व्यक्त करेंगे ?

३—यह कहना कहाँ तक ठीक है कि यदि प्रसाद के "छोटे जादूगर" की माँ न मरी होती तो उसके देशप्रेम ने भी उसे लाल के ही समान व्यक्तित्व प्रदान किया होता ? दोनों के स्वभाव की तुलना करते हुए उत्तर दीजिये ।

४—क्रान्तिकारियों ने स्वतंत्रता प्राप्ति में कहाँ तक योग दिया है ?

---

# ८. शालिग्राम

## [ राजनाथ पांडेय ]

"शालिग्राम" कहानी के लेखक राजनाथ पांडेय ने प्रचुर संख्या में हाल ही में प्रकाशित अपने बहु-चर्चित ललित निबन्धों तथा अपूर्व भाषा-शैली के कारण हिन्दी-साहित्य में अपने लिए एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। पर कहानियाँ भी आप एक अर्से से लिखते रहे हैं। पांडेय जी तथा हरिशंकर परसाई जी कहानियों और निबन्धों दोनों ही का समान क्षमता एवं सफलता के साथ निर्माण करने वाले मध्यप्रदेश के प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। पांडेय जी की कहानियों में 'शालिग्राम' का विशेष स्थान है। कला की दृष्टि से यह एक पूर्णतया सुगठित और सफल कहानी मानी गयी है।

इस कहानी में परंपरा के साथ-साथ प्रगति का अच्छा समन्वय हुआ है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शालिग्राम का चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक और पूर्ण उतरा है। प्रायः प्रत्येक गाँव में आज कोई न कोई ऐसे व्यक्ति मिलते ही हैं जो जमीन-जायदाद बढ़ाने के मोह में पड़कर अपनी स्वाभाविक सरलता और मनुष्यता को खो बैठते हैं और समस्त गाँव की सुख-शान्ति के संहारक बन बैठते हैं। शालिग्राम ऐसे ही अत्यन्त घृणित और खतरनाक किन्तु कायर व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, भले ही वह ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ हो। किन्तु सफल कहानीकार ने ऐसी अद्‌भुत और मनोरंजक परिस्थितियों का निर्माण किया है जिससे अन्त में शालिग्राम का पुनर्जीवन हो जाता है। प्रेमचन्द का प्रसिद्ध कथन कि "जिस तरह पत्थर और पानी में आग छिपी रहती है उसी तरह मनुष्य के हृदय में भी, चाहे वह कैसा ही कठोर और क्रूर क्यों न हो, उत्कृष्ट और कोमल

भाव छिपे रहते हैं ।" शालिग्राम के जीवन में चरितार्थ हो आता है, और वह एक आदर्श मानव का रूप ग्रहण कर लेता है ।

इस कहानी में ग्रामीण वातावरण की सुषमा का बड़ी ही सुन्दर भाषा में भव्य चित्रण हुआ है और कहानी पाठक के मन में दया, करुणा तथा मानवता के भाव जाग्रत करने में पूर्णतया सफल होती है ।



शायद उनका नाम कुछ और था, पर थाना-पुलिस, हाकिम-हुक्काम, अदालत-कचहरी में उनका 'शालिग्राम' नाम ही सरनाम था । वे गले में शालिग्राम की बटिया लटकाये रहा करते थे । सम्भवतः इसी से लोग उन्हें 'शालिग्राम' पुकारते थे । उनके मस्तक पर पगड़ी से सदा-विमर्दित जटा और मुख-मंडल पर फूले काँस की तरह सफेद दाढ़ी निरन्तर लहराती थी । वे महीने में केवल दस दिन घर में रहते, बाकी बीस दिन कचहरी और कचहरी-यात्रा में बीतते । उस समय, जब का यह वर्णन है, वय में वे बासठ बर्ष के थे ।

ऊँचे कद, गोरे वर्ण, प्रशस्त मस्तक, चंदन की रेखाओं, मोती-जैसे चमकते दाँतों, पतले-पतले ओंठ और बोलने में ठनकते स्वर-सहित शब्दों के शुद्ध उच्चारण तथा बीच-बीच में संस्कृत के श्लोकों के उद्धरण से उनकी वाणी को वह अद्भुत प्रवाह मिला था जिसके कारण उनकी बात पर सहसा किसी को अविश्वास नहीं हो सकता था । इसी से उन्हें अदालती कामों में बहुत सफलता मिली थी । जवानी में बहुत वर्षों तक उन्होंने किसी

सजातीय जमींदार की नौकरी की थी और अपनी अदालती अभिज्ञता तथा भव्य डील-डौल से उसका ऐश्वर्य पर्याप्त बढ़ा दिया था। पर पिछले दस-पन्द्रह वर्षों से, जब से उन्होंने निजी सम्पत्ति बढ़ाने की अतिशय लोलुपता के कारण अपनी बची-खुची सात्विकता को एकदम तिलाञ्जलि देकर अपने प्रभाव और नेकनामी का दुरुपयोग करके लोगों को त्रास देना आरंभ किया था, तब से वे लोक की आँखों में गिर गये थे।

पड़ोसी-पड़ोसी, भाई-भाई, चचा-भतीजा, सास-पतोहू, देवर-भौजाई और कभी-कभी पति-पत्नी तक में वे चाहते तो आसानी से कलह रोक देते। पुलिस वालों से उनकी बड़ी सगाई थी। दो आदमियों में फूट होते ही वे एक का पक्ष ग्रहण कर लेते और उसके लिए अदालत से सच का झूठ और झूठ का सच करा लिया करते। कभी-कभी अकस्मात पहले पक्ष का साथ छोड़ दूसरे दल का साथ देने लगते और उसे आगे लड़ने में रुपये की मदद भी देते। और अन्त में उसकी सारी जमीन अपने नाम लिखा लेते। प्रायः लावारिस लोगों को अपने यहाँ आश्रय देकर उनमें बुरी से बुरी लतें डाल देते और उनकी सम्पत्ति अपने नाम कराके अदालत से उस पर कब्जा कर लेते। अक्सर गरीबों को थोड़ा रुपया देकर सादे कागज पर रसीदी टिकट के ऊपर उनके अँगूठे का निशान ले लेते और बाद में उसमें मनमानी रकम भरकर उन पर दावा करते। उसका सब कुछ हड़प लेते।

पिछले दो वर्षों में पास-पड़ोस के गाँवों में तीन हत्याएँ हुईं, पर उनमें से एक के भी अपराधियों को दंड नहीं मिल पाया।

लोग निधड़क यह कह देते कि शालिग्राम ही की मदद से सब छूट गये। कुछ लोग तो दबी जबान से यहाँ तक कहते थे कि इन हत्याओं में उनका भी इशारा था।

–२–

कुआर और कार्तिक की पुष्ट सिहरी हुई धरती ने बीज के दानों को गर्भ में धारण करके जो बिरवे उगाये थे, पूस और माघ में शिशिर के शीत को पाकर वे डिढ़ाये और मतवाली फगुनहट का रस लेकर पोढ़ दानों से भर आये थे! इसलिए जिन किसानों ने परिश्रम से जुताई-बोवाई करके अपनी खेती भले प्रकार सींची थी वे खेत के डाँड़ों पर खड़ा होते ही वसन्त की समस्त श्री बटोरने वाली कोयल से भी अधिक मस्त होकर गा उठते थे। उस साल आम भी खूब बौरे थे और मधूक-वृक्षों से मोती-जैसे सफेद मीठे फूल रात भर चू-चूकर नीचे की सारी भूमि पाटे डाल रहे थे। पर जिन अभागों के बाप-दादों के खेत नीलाम पर चढ़ थे, वे उन खेतों के डाँड़ों पर लोगों की आँखें बचाकर कभी जा पड़ते, तो उन्हें ऐसा लगता था मानो उनकी छाती पर साँप लोट रहा हो। और जिनके मधूक-वृक्ष अपने न रहे थे वे यदि रात में उस तरफ से निकलते तो महुए के धरती पर गिरने का टप्-टप् उनके कानों में उतनी ही पीड़ा पहुँचाता जितनी पीड़ा उन वृक्षों के नीचे फिरने वाले सर्प को सिर पर उन फलों के गिरने से होती थी।

उस आनन्ददायक वसन्त-ऋतु में भी मद्धूपुर के जिन चार प्राणियों को चैन न थी उनमें से एक तो बाभन थे और बाकी

तीन में से एक अहीर, दूसरा केवट और तीसरा गोसाईं था। पहले ने उन तीनों में से किसी का फसल से भरा खेत, किसी के आम और महुए और किसी की खेत-बारी दोनों ही अपना बनाने के उद्देश्य से अदालत में बझा रखे थे।

वे बिचारे जाड़े की ठिठुराती कठिन आधी रात ही में अपने गाँव से कई कोस उबेने पैर पैदल चलकर सबेरे लारी वाली सड़क पर पहुँचते और वहाँ से कचहरी जाते। दिनभर बिना खाये-पीये कचहरी में भटकने के बाद शाम को फिर लारी से वापस आते और आधी रात तक पैदल चलकर अपने-अपने घर पहुँचते। वे ऐसे दिन थे जब मुर्दों के लिए कफन मिलना भी कठिन था, इसलिए उनके शरीर वस्त्र के नाम पर केवल कुछ चिथड़ों ही से ढँके होते थे। उन्हें हर पेशी पर कम से कम तीन रुपये जुटाने ही पड़ते थे। उधर गाँव में कठिनाई से यदि कोई उनकी ओर से गवाही करने को तैयार होता भी था तो वह जाड़े की रात की ठंड से बचने के लिए तारीख के पहले ही पनही या खोल लेकर ही घर से बाहर पैर बढ़ाने का प्रस्ताव रखता था। कचहरी का हाल यह था कि अक्सर मुकदमा पेशी में पड़ जाता था। अक्सर हाकिम दो बजे के पहले नहीं आता था। जिससे अनेक मुकदमों में बिना पुकार हुए ही तारीखें बढ़ जाती थीं। जिस दिन मुकदमा पेशी में पड़ जाता, बिचारों को तीन-तीन दिन तक बिना अन्न के रह जाना पड़ता था!

कुआर में खेतों की बोआई आरम्भ होते ही मुकदमे छिड़े थे और कार्तिक, अगहन, पूस तथा माघ भर चलते रहे। इस

बीच अहीर की एकमात्र भैंस, जिसके दूध की बिक्री से उसके कुटुम्ब का पालन हो रहा था, एक बार जब उसका मुकदमा पेशी में पड़ा था, दरवाजे पर खूँटे से बँधी-बँधी गुम हो गई और उसे उसका पता तब लगा जब 'कानीहौस' के मुंशी के दामाद के हाथ वह पन्द्रह रुपये पर नीलाम हो गई ! इसी बीच केवट की मँड़ई में अनायास एक रात आग लग गई, जिससे उसके यहाँ रखा बिरादरी का टाट जल गया और अपने को छोड़ बाकी सब पंचों के मना करने पर भी उसने लाख उपाय करके पैंतीस रुपये में नया खरीद कर उसकी जगह दूसरा नया टाट रख दिया । और, गोसाईं महाराज की एकमात्र सन्तान, उनकी जवान विधवा न जाने कहाँ चली गई ।

जाड़े का अन्त होते-होते उनके मुकदमों का भी अन्त हो गया । शालिग्राम की उन तीनों पर डिग्री हो गई ! तब आपसी वैमनस्य छोड़कर वे अभागे इकट्ठे बैठने लगे । कभी-कभी वे इकट्ठे बैठकर बातें करते और सारी की सारी रात बीत जाती पर क्या करना चाहिये, इसका कोई निर्णय न कर पाते ।

किसी-किसी ने गोसाईं महाराज को यह कहते सुना कि जीविका जीव के संग जाती है और जीते-जी वे किसी को अपनी जीविका न लेने देंगे । किन्तु शालिग्राम पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था । उनसे अगर कोई कभी इशारे से कुछ कहता तो वे हँसकर कहते—

जाको राखे साइयाँ, मारि सकै नहिं कोय ।
बार न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय ।।

—३—

मद्धूपुर में न जाने कितने दिनों बाद, वह एक रात जिन चार आदमियों के लिए दिल दहला देनेवाली बनकर आई थी, उनमें से एक वही बाभन थे, जो दूसरे दिन अपने तीन-तीन जीते हुए मुकदमों की डिगरियाँ इजराय कराने कचहरी जाने वाले थे, और बाकी तीन वही अहीर, वही केवट और वही गोसाईं थे। बाभन महाराज ने शाम होते ही भोजन करके चारपाई बिछाई और सोचा कि आधी रात तक नींद का सुख लेकर रात रहे ही उठेंगे और सबेरा होते-होते लारीवाली सड़क पर पहुँचकर पहली ही लारी से शहर पहुँच जायँगे। उधर उन तीनों अभागों को कई रात से नींद नहीं आई थी, इसलिए उन्हें उस रात भी नींद लाने वाली शान्ति न होने से सोने की सुधि नहीं थी। वे तीनों आधी रात तक इकट्ठा बातें करते रहे, और जब चल पड़ने का निश्चय करके अपनी-अपनी खाट पर से लाठियाँ लेने गये, तो कोई बैठे ही बैठे और कोई कमर सीधी कर लेने के लिए खाट पर पैर फैलाते ही निद्राभिभूत हो गया। और, जब उनकी नींद खुली तो उन्हें प्रातःकाल के आगमन की सूचना देने वाली तेलिन चिरई की अत्यन्त शान्तिदायिनी 'ठाकुरजी! ठाकुरजी, की रटन सुनाई पड़ रही थी। उधर बाभन महाराज को लाख प्रयत्न करने पर भी नींद नहीं आई थी, अतः आकाश की ओर देख शुक्रतारा की स्थिति से आधी रात शेष रहने का अनुमान करके चारपाई ेड़कर चल खड़े हुए।

गाँव के बाहर इकट्ठा होकर उन तीनों ने सलाह की और लगे दौड़ने। गोसाईं ने अहीर और केवट को बढ़ावा देते हुए कहा कि अब यह रात जिन्दगी में फिर नहीं मिलेगी, जो बढ़ गया वह बढ़ जायगा! जो पिछड़ गया वह पिछड़ जायगा!

बस्ती को बराते हुए वे खेत-बारी, वन, ताल और बाह्‌ल-खंदक को पार करते हुए कई किलोमीटर दौड़ते चले गये!

उधर शालिग्राम न जाने कितने दिनों के बाद रात भर जगे थे, इससे उनके पैर जल्दी-जल्दी नहीं उठ रहे थे। जैसे उनके एक-एक पैर में एक-एक पंसेरी बाँधी गई हो! इसी से जब प्रातःकाल निकट था, वे पलाशों के उस वन में ही पहुँच पाये जिसके आस-पास किलोमीटरों तक कोई बस्ती नहीं थी और जिसके मध्य में वही पुराना पोखर था, जो वर्ष में एक जीव जरूर लेता था, और जिसके भीटों पर खड़े आम और महुए के विशाल वृक्षों पर जनमत के अनुसार, कभी-कभी दिन ही में प्रेत खेला करते थे! उस वृद्ध थके पथिक ने वहाँ कुछ देर रुक कर विश्राम कर लेना चाहा।

वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गया और बैठते ही उसकी पलकें ढँक गईं। फिर उसने एक सपना देखा। ऐसा भयानक सपना उसने जीवन में पहले कभी नहीं देखा था। उसे उस एक ही स्वप्न में एक ही क्षण में अतीत की—काशी, प्रयाग, अयोध्या की भिन्न-भिन्न युगों की बड़ी ही विचित्र घटनाएँ दिखाई पड़ीं। उसने देखा कि वह किसी पुरातन युग में काशी का अहीर है और एक निर्धन ब्राह्मण के टूटे मकान पर गायें बाँध-बाँधकर उसके खंडहर

तथा दो गायों पर कब्जा कर लेता है। अन्त में वह ब्राह्मण उस जमीन पर बैठकर अनशन करता है और दूसरे दिन वह उसे वहाँ से हटा देने के लिए इतने जोर से धकेल देता है कि उसके प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं। पलक मारते ही दृश्य बदलता है और इस बार उसने प्रयाग में केवट के घर जन्म लिया है। गोरखपुर के कोई ब्राह्मण जमींदार कल्पवास करने प्रयाग में संगम पर टिके हुए हैं। वह केवट रात में उन जमींदार को मलाई में जहर देकर मार डालने के बाद उनकी कुटिया में अपनी चिलम की आग डालकर उन्हें भस्म कर डालता है। फिर तीसरे पल में दृश्य अयोध्या का है, जहाँ वह गोसाईं होकर जनमा है और एक ब्राह्मण की विधवा कन्या को भगा ले जाता है जिससे उसका वृद्ध पिता सरजू में डूबकर आत्महत्या कर लेता है।

अन्तिम दृश्य को देखते ही उसका दिल धड़क गया। उसने पहचान लिया कि सरजू में डूबकर प्राण तजने वाला वह ब्राह्मण अन्य कोई नहीं, आज का उसका प्रतिवादी गोसाईं ही था और वह स्वयं अयोध्या का वह गोसाईं था जिसने ब्राह्मण की विधवा कन्या भगाई थी! उसकी आँख खुल गयी। उसने देखा कि वह ऊपर से नीचे तक पसीने में नहा उठा था। आँख खुल जाने पर भी वही स्वप्न अब भी उसके सामने नाच रहा था। अब चेतनता के कुछ स्थिर होने पर उसे स्मरण हो आया कि स्वप्न में काशी में अहीर और प्रयाग में केवट के घर जन्म लेकर पुरातन युग में वह जिन दो ब्राह्मणों की हत्या कर चुका है, वे ही आज उसके विरोधी वह अहीर और वह केवट होकर जनमे हैं, और अपने

प्राचीन काल के तीन-तीन महाशत्रुओं को इस जीवन में इस प्रकार एकत्र हुआ सोचते ही उसके हाड़ काँप उठे !

—४—

उस पलाश वन के पास पहुँचते-पहुँचते वे तीनों साथी, जो एक साथ दौड़ते हुए चले थे मन्द पड़ गये। सूर्योदय का समय भी निकट आ रहा था। उसी समय शिवफेर गोसाईं ने, जो टोह लेने पोखर के भीट पर चढ़ गये थे, अपने साथियों को सचेत किया। पलक मारते ही उन तीनों ने उस पेड़ को घेर लिया, जिसके नीचे बैठा वह बूढ़ा अपने विगत की क्रूरताओं का सपना देख रहा था। वे तीनों उसे दाँत पीसते हुए क्रोध से घूरने लगे; पर अपने शत्रुओं को इस प्रकार सन्नद्ध देखकर भी वह वहाँ से तिरस्कार में चल देने के लिए न उठ सका, और न कुछ बोल ही सका। उसकी उस आकस्मिक तेजहीनता ने उन तीनों को क्षण भर के लिए असमंजस में डाल दिया। पर असमंजस स्थायी न बन सका। गोसाईं ने अपने साथियों को ललकारा और लाठी से पहला वार स्वयं किया। तब वह बूढ़ा झट उठ खड़ा हुआ और बोला—"खबरदार ! पहले हमसे दो बात कर लो, फिर जो कुछ अच्छा लगे करना !"

"क्या बात करते हो"—गोसाईं ने कड़ककर पूछा।

"तुम चाहते क्या हो ?"

क्या तुम समझ नहीं रहे हो ? हम लोग आज तुम्हें हलाल करने आये हैं ?"

"अच्छा तो तुम्हें कसम है, घायल करके मत छोड़ जाना प्राण ही लेकर जाना ! पर किस तरह मारोगे मुझे ?"

"तुम्हारे ऐसे अधमों के लिए दो लाठियाँ ही काफी हैं, पर हमारे पास तो तीन हैं !"

"अच्छा तो दस मिनिट का समय शालिग्राम के स्नान के लिए दे दो और जब म नीचे के पोखर से लौट आऊँ तो तुम मेरा प्राण ले लेना !"

गोसाईं ने स्वीकार कर लिया।

तालाब से निकल भागने के जितने रास्ते थे उन सब पर नजर रखने के लिए वे तीनों छिटक गये और भीटों में छिपकर शालिग्राम की चौकसी करने लगे।

शालिग्राम ने तालाब के किनारे पहुँचकर अपना कचहरी का बस्ता रख दिया। फिर गले में बँधे शालिग्राम को निकाला। फिर कमर-भर जल में चले गये। फिर हाथ में शालिग्राम को लेकर ऊपर उठाया और विलाप के स्वर में जोर-जोर से कहने लगे—"क्या शालिग्राम ! हमने जीवन भर तुम्हारी सेवा इसी दिन के लिए की थी। बोलो न ?" फिर विलपना बन्द करके यों बोले—"हाँ तब यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हारी भी यही इच्छा है कि इस सूने वन में भगवान् सूर्य का दर्शन मिलने के पहले ही एक लाठी ऊपर और एक लाठी नीचे और बीच में मेरी गरदन दबाकर मेरी लाश तड़पा दी जाय ?"………"क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आखिर कौन-सा ऐसा पाप मैंने किया था जो

यह सब हो रहा है?" ... ..."तो अगर पिछले तीन जन्मों में मैंने इनको मारा था, तो उचित तो यह था कि यह तीनों भी अलग-अलग तीन जन्मों में मुझे मारते।"........."अच्छा! यह बात है? तब तो भगवन् यह तुम्हारी कृपा ही है जो एक ही जन्म में तुम मेरे तीनों जन्मों का उद्धार किये दे रहे हो।"

फिर स्नान करके गले में शालिग्राम को बाँध, कचहरी का बस्ता बगल में दबाये, शालिग्राम धीरे-धीरे चढ़कर ऊपर भींटे पर आये और उसी मधूक-वृक्ष के नीचे चुपचाप बैठ गये। उसी क्षण शिवफेर गोसाईं, गोटई अहीर और पलटू केवट भी सामने आ खड़े हुए। शालिग्राम ने कहा—"अब देर मत करो! तुम्हें जो करना है, जल्दी करो।"

इस बार शालिग्राम के स्वर में पहले-जैसी दीनता नहीं, वरन् दृढ़ता थी। उन तीनों ने सुना था कि स्नान करते समय किसी से वार्त्तालाप हो रहा था। वे विस्मय में पड़े हुए थे। गोसाईं ने कहा—"पहले तुमको यह बताना होगा कि तुम किससे बातें कर रहे थे और क्या बातें कर रहे थे?"

"तुमसे मतलब? तुम अपना काम करो।" शालिग्राम ने डाँटकर कहा।

"हम तब तक तुम्हें नहीं हतेंगे जब तक तुम यह बतला नहीं दोगे।"

"तो यह तो हम नहीं बतलायेंगे।"

गोसाईं अपने साथियों का मुँह ताकने लगा। तब गोटई ने आगे बढ़कर जमीन पर अपनी लाठी जमाकर रखी और

केवट के हाथ से उसकी लाठी लेकर पास ही अलग रखते हुए ललकारकर गोसाईं से कहा—"खींच लाओ उस पाखंडी को इधर और जमीन पर पटककर मेरी लाठी पर उसकी गरदन रखो !" पर न गोसाईं ही आगे बढ़ा और न केवट ही। केवट ने धीरे से कहा—"गोटई ! समझ-बूझकर आग में कूदो !"

"गोटई जब आग में कूदते हैं तो समझना-बूझना दूसरों के लिए छोड़ देते हैं। तुम सबने महाबीरजी के थान पर किरिया खाई थी, पर अब तुम हट रहे हो। तुम लोग भले ही हट जाओ, पर मैं शालिग्राम की लोथ मिट्टी में साने बिना नहीं जाऊँगा।"

"नहीं गोटई ! तनिक ठहर जाओ। यह प्रेत किसी से बातें कर रहा था ! कोई सबूत तैयार कर रहा था।" शिवफेर गोसाईं ने कहा।

"तुम्हें यह कहते लाज नहीं आती ? गिद्ध-जैसे तुम सब भींटे पर बैठे हुए थे, फिर कोई आ गया और हमसे बातें की और तुम्हारी आँखों में धूल डालकर कहीं चला भी गया ?"

"तब महराज ! तुम बतला किससे रहे थे ?"—केवट ने पूछा।

"और किससे बतलाएँगे भगत ? शालिग्राम को छोड़ और हमारा है कौन ?"

"तो क्या शालिग्राम तुमसे बोले थे ?"

शालिग्राम ने मौन से उत्तर दिया। आँखें बन्द करके गले में लटकते हुए शालिग्राम को दोनों हाथों में रखकर मस्तक से लगाया !

"क्या बोले थे शालिग्राम ?"—गोसाईं ने पूछा ।

तब शालिग्राम बोले—"जब शालिग्राम से हमने रो-रोकर कहा कि भगवान् ! क्या इसी दिन के लिए हमने जिन्दगी भर आपकी पूजा की थी, तब उन्होंने हमसे कहा—"शालिग्राम ! संसार में कोई आदमी हत्या उसी की करता है जो पहले उसकी हत्या किए रहता है । पिछले तीन जन्मों में तुमने काशी, प्रयाग और अयोध्या में अहीर, केवट और गोसाईं के घर जन्म लेकर इन तीनों की—जो तब ब्राह्मण थे—हत्या की थी । अब इस जन्म में यह लोग अहीर, केवट और गोसाईं होकर जनमें हैं और तुम ब्राह्मण हुए हो । इस जन्म में ये लोग तुमसे बदला लेने आये हैं । हमने तुम पर यह बड़ी दया की है जो तीनों को एक ही जन्म में इकट्ठा कर दिया है । अब तुम इसी में अपनी भलाई समझो और इन तीनों को अपना प्राण हर लेने दो ।"

अहीर, केवट और गोसाईं—तीनों एक दूसरे का मुँह देखने लगे ! छन-भर बाद पलटू केवट बोला—"क्यों भाई शिवफेरे! जब हमने किसी जन्म में इनका खून किया होगा तभी न इन्होंने पुराने जन्म में हमारा खून किया होगा !"

"ऐसा ही तो जान पड़ता है !"

"और आज जो हम लोग इनका खून करेंगे तो आगे के जन्म में हमसे बदला लेने के लिए ये फिर हमारा खून करेंगे ?"

"जरूर"—गोसाईं ने कहा ।

"तो आओ न, हम इन्हें छोड़ दें ! हम इनका खून न करें जिससे ये फिर हमारा खून न कर सकें ।"

शिवफेर गोसाईं और पलटू केवट, गोटई अहीर की ओर देखने लगे। गोटई चुप होकर जमीन की ओर देखने लगा। तब शिवफेर गोसाईं ने कहा—"ठीक है!"

उसी समय शालिग्राम गुरु ने झट आँखें खोल दीं। काँख में दबा कचहरी का बस्ता उनके सामने फेंकते हुए बोले—"जो ऐसी बात है तो लो, तुम लोग अपनी-अपनी डिग्री निकाल लो, मैं भरपाई लिखे देता हूँ।"

गोसाईं ने झटपट बस्ता खोलकर तीनों की डिगरियाँ निकालीं और शालिग्राम ने पेन्सिल से तीनों पर भरपाई लिख दी। फिर बोले—"अब जाओ, तुम लोग अपना-अपना खेत काटो, अपना महुआ बीनो, और अपने पेड़ों का आम तोड़ो-खाओ। हमको तुम्हारी किसी चीज से सरोकार नहीं है।" फिर कागजों की ओर इशारा करके बोले—"पलटू भगत! बीड़ी पीते हो न? अब इस पाप की गठरी को भी दियासलाई की एक काँड़ी देकर भस्म कर डालो। मैं अब कभी कचहरी का मुँह नहीं देखना चाहता।"

पलटू ने कागजों के बस्ते में आग लगा दी।

× × ×

अपने तीनों पड़ोसियों के साथ जाकर शालिग्राम ने पुनः उस पुष्कर में स्नान किया, और वे चारों अपने तन और मन की मैल धोकर बाहर आये। फिर उन्होंने उस मधूक-वृक्ष के नीचे रात-भर गिरे उसके मधुर फूलों में से दो-दो, चार-चार लेकर खाया और कुएँ पर जाकर पानी पिया। फिर आगे-आगे शालिग्रामजी

और पीछे-पीछे उनके तीनों पड़ोसी धीरे-धीरे अपने ग्राम को इस प्रकार लौट गए जिस प्रकार दिन भर बढ़ी हुई नदी का वेग कम होने पर चारों ओर फैला पानी रात में धीरे-धीरे नदी के गर्भ में लौट जाता है !

**प्रश्न**

१—जिस समय की घटनाएँ इस कहानी में वर्णित हैं उस समय की गाँव की गरीबी और बेबसी का वर्णन कीजिये।

२—"शालिग्राम का चरित्र मनोवैज्ञानिक है"; इसको स्पष्ट कीजिए।

३—शालिग्राम की बुद्धिमानी से आप अधिक प्रभावित हैं अथवा उसके हृदय-परिवर्तन से ?

४—इस कहानी को पढ़कर आपने किन-किन ऐसी बातों की जानकारी प्राप्त की जिनका आपको पहले पता नहीं था ?

———

# ९. आत्मशिक्षण

[ जैनेन्द्रकुमार जैन ]

इस कहानी में जैनेन्द्रकुमार की कहानी-कला की वे सभी विशेषतायें एक साथ ही दृष्टिगत होती हैं जिनके लिए वे विख्यात हैं। कहानी के आरम्भ में कुशल कलाकार ने दो पैराग्राफ में किशोरावस्था के उन सभी लक्षणों और किशोर या किशोरी की मनोदशाओं का पूरा विवरण दे दिया है जिनके कारण एक तरफ तो किशोर स्वयं अपनी अलसाई, शिथिलता एवं स्वभाव के अटपटेपन का कारण नहीं समझता, और दूसरी ओर बिना कुछ अपराध किये ही अपने माँ-बाप के लिए एक पहेली बनकर उनको चिंतित करने लगता है। वास्तव में बेचारे रामचरण की कठिनाई वह स्वाभाविक कठिनाइ है जिसका सामना उस अवस्था में प्रत्येक मानव-प्राणी को अपनी पूर्ण यौवनावस्था प्राप्त करने के पूर्व झेलनी ही पड़ती है। बालक या किशोर के जीवन में यही सबसे अधिक नाजुक अवस्था होती है जिसमें कितने ही नादान माता-पिता अपने अतिशय प्यार के कारण अपनी सन्तान के भविष्य को सदा के लिए अंधकारमय बना देते हैं। जैनेन्द्रजी ने इस कहानी द्वारा इस समस्या को पूर्णरूप से सामने रख दिया है। साथ ही इस समस्या का हल भी बड़ी कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है। माता-पिता अपने संतान की किशोरावस्था में उसकी सुस्ती और उदासीनता को गलत समझकर उसका जीवन कैसा दयनीय बना देते हैं रामचरण इसका ज्वलन्त उदाहरण है। वास्तव में माता-पिता को इस अवस्था में अपने बच्चों के साथ उनके प्रति अपने अतिशय स्नेह के कारण न तो उनके पढ़ने-लिखने या खाने-पीने के सम्बन्ध में बहुत आग्रह करना चाहिए और न उनके सम्बन्ध में कोई दुश्चिन्ता ही करनी चाहिए। "मछुए की बेटी" तिन्नी या "उसकी माँ" वाले लाल

में व्यक्तित्व की दृढ़ता इसी कारण आ गयी थी कि महाशय रामरत्न और दिनमणि जैसे हर क्षण पीछे पड़े रहने वाले माँ-बाप उन्हें नहीं मिले थे।

कहानी का शीर्षक आत्मशिक्षण बहुत ही सार्थक है। यह दोतरफा आत्मशिक्षण का संकेत दे रहा है। एक तरफ तो रामचरण के उस आत्म-शिक्षण की ओर संकेत दे रहा है। जो स्कूली पाठ्यक्रम से अलग राम-चरण ने प्राप्त किया था और जिसका पता जब उसके पिता रामरत्न को लगा तो वे अवाक् रह गये थे। और दूसरी तरफ यह आत्मशिक्षण स्वयं महाशय रामरत्न और दिनमणि के लिए है। लेखक मानो इस कहानी द्वारा सभी माँ-बाप के लिए अपनी संतान के सम्बन्ध में एक आत्मशिक्षण की आवश्यकता बता रहा है।

भाषा-शैली, विषय-प्रतिपादन और प्रभाव सभी दृष्टियों से यह एक अत्यन्त सफल कहानी है।



महाशय रामरत्न को इधर रामचरण के समझने में कठिनाई हो रही है। वह पढ़ता है और सपने में रहता है। कुछ कहते हैं तो दो-एक बार तो सुनता ही नहीं। सुनता है तो जैसे चौंक पड़ता है। ऐसे समय, मानो विघ्न पड़ा हो इस भाव से वह झुंझला भी उठता है। लेकिन तभी झुंझलाने पर वह अपने से अप्रसन्न भी दीखता है और फिर बिन बात, बिन अवसर वह बेहद विनम्र हो जाता है।

यह तेरह वर्ष की अवस्था ही ऐसी है। तब कुछ बालक में उग रहा होता है। इससे न वह ठीक बालक होता है न कुछ और।

उसे प्यार नहीं कर सकते, न उससे परामर्श कर सकते हैं। तब वह किस क्षण बालक है और किस पल बुजुर्ग, यह नहीं जाना जा सकता। उसका आत्मसम्मान कब कहाँ रगड़ खा जायगा, कहना कठिन है। उससे कुछ डरकर चलना पड़ता है।

रामरत्न की बात भी तो दूसरी है। घर में अधिक काल उन्ह नहीं रहना होता। सबेरे नौ बजे दफ्तर की तैयारी हो जाती है और साँझ अँधेरे वापस आते हैं। बाद में खाने के समय के अलावा कोई घंटा भर घर में रहने पाते होंगे। रात नींद की होती ही है पर दिनमणि की परेशानी की न पूछो। वह रामचरण को लेकर हैरान है। अकेले में बैठकर सोचती है, दो जनियों से पूछकर वह विचारती है। पर ठीक कुछ समझ नहीं आता कि रामचरण से कैसे निबटे? जानती है कि यह लड़का सुशील है, खोटी आदत कोई नहीं है। किताबें सदा अच्छी और धर्म की पढ़ता है पर उसकी तबियत की थाह जो नहीं मिलती। वह गुम-सुम रहता है। चार दफे बात कहते हैं तब जाकर कहीं जवाब देता है। इस कारण आये दिन कलह बनी रहती है। इसमें दिनमणि को अपनी जुबान खराब करनी पड़ती है और रामचरण अटल रहता है। वह दस तरह झींकती है—फटकारती है। डपटती है और कहती है मैं क्या भौंकने के लिए हूँ? पर रामचरण को जो करना होता है करता है और जो नहीं करना होता वह नहीं करता। सारांश, दिनमणि कह-सुनकर अपने-आप में ही फुंक रहती है।

दिनमणि ने अब अपने भीतर से सीख लेकर रामचरण से कहना-सुनना लगभग छोड़ दिया है। कुछ होता है तो पुत्र के

पिता पर जा डालती है। सबेरे का स्कूल है और आठ बज गये हैं, पर रामचरण अभी खाट पर पड़ा है। पड़ोस के सब बालक स्कूल गये, खुद घर की छोटी बिन्नी नाश्ता करके स्कूल जा चुकी है। आँगन में धूप चढ़ आई है। लेकिन रामचरण है कि खाट पर पड़ा है।

दिनमणि ने पति से कहा—"सुनते हो जी, लड़का सो रहा है और वक्त इतना हो गया है। उसे क्या स्कूल नहीं जाना है? जगा क्यों नहीं देते?" रामरत्न अखबार पढ़ रहे थे, युद्ध में अनी का समय आया ही चाहता है, बोले—"क्या रामचरण!—तो?"

"तो क्या"—पत्नी कपार पर हाथ रखकर बोली—"सूरज सिर पर आ जायगा तब वह उठेगा? एक तो कमजोर है और तुमने आँख फेर रखी है। कहती हूँ, स्कूल नहीं भेजोगे? या ऐसे ही उसे नवाब बनाने का इरादा है? तुमने ही उसे सिर पर चढ़ा रक्खा है।"

रामरत्न ने कहा—"क्या बात है? बात क्या है?"

दिनमणि का भाग्य ही वाम है। वैसा पुत्र और ऐसा पति! बोली—"बात क्या है—तब से कह तो रही हूँ कि अपने लाड़ले को चलकर उठाओ। पता है, नौ बजेंगे!"

रामरत्न ने अन्दर जाकर जोर से कहा—"रामचरण, उठोगे नहीं या तुम्हें पढ़ने का खयाल नहीं है?"

करवट लेकर रामचरण ने पिता की ओर देखा।

उन आँखों में निर्दोष आलस्य था और आज्ञा-पालन की शीघ्रता नहीं थी।

पिता ने कहा—"चलो, उठो। सुना नहीं।"

मालूम हुआ कि रामचरण ने सचमुच नहीं सुना है। वह झटपट उठकर बैंठ नहीं गया। पिता ने हाथ से पकड़कर उसें खींचते हुए कहा—"चलो, उठते हो कि नहीं? दिन चढ़ आया है और दुनिया स्कूल गयी। नवाब साहब सोते पड़े हैं?"

रामचरण पहले झटके में ही उठकर सीधा हो गया। अब वह आँखें मल रहा था। पिता ने कहा—"चलो, जल्दी निबटो और स्कूल जाओ। क्या तमाशा बना रक्खा है, अपने स्कूल का तुम्हें खयाल नहीं है?"

रामचरण बिस्तर से उठकर चल दिया। दिनमणि उसी कमरे में एक ओर खड़ी यह देख रही थी। उसके जाने पर बोली—"मिजाज तो देखो इस शरीर के। इतना भौंकवाया, तब कहीं जाकर उठा है। और अब भी देखो तो मुँह चढ़ा हुआ है।"

अखबार रामरत्न के हाथ में ही था, बोले—"उसके नाश्ते-वाश्ते को निकाल रखो कि जल्दी स्कूल चला जाय। देर न हो। बच्चा है, एक रोज आँख नहीं खुली तो क्या बात है?"

दिनमणि इसका उपयुक्त उत्तर देने को ही थी कि रामरत्न चलकर अपनी बैठक में आ गये और रूस-जर्मन मोर्चे का नया नक्शा अपने मन में बैठाने लगे। पर नक्शा ठीक तरह वहाँ जम न सका; क्योंकि जहाँ रोस्टोव चाहते हैं, वहाँ रामचरण आ बैठता था। तब रामचरण पर उन्हें करुणा होने लगी। मानो वह अनाथ हो। माता है, पिता है, पर जैसे उस बालक का फिर

भी संगी कोई नहीं है। उन्हें अपने पर और अपनी नौकरी पर क्षोभ होने लगा कि देखो वह लड़के के लिए कुछ भी समय नहीं दे पाते। घर में रहकर बालक पराया हुआ जा रहा है।

इसी समय सुनते क्या हैं कि अन्दर कुछ गड़बड़ मच उठी है। जाकर मालूम हुआ कि रामचरण (दिनमणि ने साहब बहादुर कहा था।) नहाया नहीं है, न ठीक तरह मंजन किया है और दिनमणि कहती है तो बदलकर नया निकर भी नहीं पहनता है।

दिनमणि ने कहा—"निकर बदल लो, रामचरण ?"

उसने कहा—"देर हो जायगी।"

मैंने कहा—"आधी मिनट में क्या फर्क होता है, इतने के लिए माँ का कहना नहीं टाला करते, भाई।"

रामचरण ने इस पर जाकर निकर बदल लिया और बस्ता लेकर चलने को तैयार हो गया।

स्कूल जाते समय वह दस पैसा ले जाता है। देते समय पिता उसे सतर्क करते हैं कि ऐसी-वैसी चीज बाजार की लेकर नहीं खानी चाहिए, समझे। पर वह बात ऊपरी होती है और पिता अपना टैक्स देना नहीं भूलते। उसको जाते देख पिता ने कहा—"क्यों आज दस पैसे नहीं ले जाओगे ?"

उसके आने पर कहा—"नाश्ता तो करते जाओ और पैसे भी ले जाना।"

उसने सुन लिया। उसका मुँह गिरा हुआ था और वह बोला नहीं।

रामरत्न ने सोचा कि स्कूल में शायद देर हो जाने का उसे डर है। थपथपाते हुए वह उसे मेज पर ले गये और खुद मँगाकर नाश्ते की तश्तरी उसके सामने रख दी। कहा कि मैं हेडमास्टर को चिट्ठी लिख दूँगा, देर के लिए वह कुछ नहीं कहेंगे। अब तुम खाओ। तभी उन्होंने घड़ी देखी साढ़े आठ हो गये थे और उनका सब नित्यकर्म शेष था।

"खाओ बेटा, खाओ।" कहते हुए वह वहाँ से चल दिये।

स्नान समाप्त कर पाये थे कि बाहर से दिनमणि ने सुनाकर कहा—"देखो जी, तुम्हारे साहबजादे बिना खाये-पीये जा रहे हैं। फिर जो पीछे तुम मुझे कहो।"

रामरत्न शीघ्रता से केवल धोती पहने और अँगोछा कन्धे पर रखकर बाहर आये, रामचरण से बोले—"नाश्ता करते जाते बेटे।"

रामचरण का मुँह सूखा था और गिरा हुआ था। उसने कुछ जवाब नहीं दिया।

"क्यों तबीयत तो खराब नहीं?"

रामचरण ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से पिता को देखा और अब भी कुछ बोला नहीं। पिता को ऐसा लगा कि उन आँखों में पानी तिर आना चाहता है। उन्हें कुछ समझ न आया। हठात् बोले—"माँ से नाराज नहीं होना चाहिए। भई, वह जो कहती है तुम्हारे भले के लिए ही कहती है। आओ चलो, कुछ नाश्ता कर लो।"

रामचरण फिर एक बार गूँगी आँखों से देखकर मुँह लटकाये वहीं-का-वहीं खड़ा रह गया।

पिता ने इस पर पुत्र को किंचित् उपदेश दिया और फिर भी उसे वहीं अचल देखकर किंचित् रोष में उसे छोड़कर चल दिये। वहीं से पुकारकर पत्नी से उन्होंने कहा––"नहीं खाता है तो जाने दो।" और रामचरण के प्रति कहते गए––"हमारे बक्स में पर्स होगा, उसमें से अपने दस पैसे लेते जाना समझे? भूलना नहीं।"

रामरत्न संध्या बीते घर लौटे तो देखा कि रामचरण खाट पर लेटा हुआ है। और रोज अब तक वह खेल से मुश्किल से लौट पाता था। यह भी मालूम हुआ कि उसने खाना नहीं खाया है और उसकी माँ ने काफी उसे कहा-सुना है।

रामरत्न विचार-शील हैं, पर उन्हें अति अच्छी नहीं लगती। सब सुनकर उन्होंने जोर से कहा––"रामचरण, क्या बात है जी?"

दफ्तर से वह इसी उधेड़-बुन में चले आ रहे थे। डर रहे थे कि घर में कहीं बात बढ़ी न हो। उनके मन में पुत्र के लिए करुणा का भाव था। उन्हें अपना बचपन याद आता था कि किस तरह बचपन में उन्हें भी गलत समझा गया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इन्ट्रेंस में पढ़ी 'होम कमिंग' कहानी का वह लड़का याद आता था जिसका नाम चाह कर भी वह स्मरण न कर पाते थे। उसकी बात सोचकर उनके रोंगटे खड़े हो जाते थे। विचार करते थे कि लड़कों की अपनी स्वप्न की दुनिया अलग होती है।

हम बड़ों का प्रवेश वहाँ निषिद्ध है। अपने सपनों पर चोट वह नहीं सह सकते। हम बड़ों को इसका ख्याल रखना चाहिए।

लेकिन जब घर में पैर रखते ही दिनमणि ने रामचरण की उद्दण्डता और अपने धैर्य की बात सुनाई तो उन्हें मालूम हुआ कि सचमुच लड़के में जिद बढ़ने देना नहीं चाहिए। यह बात सच थी कि दिनमणि ने स्कूल से लौटने पर पुत्र से खाने के लिए आध घंटे तक अनुरोध किया था। उस सारे काल रामचरण मुँह फेरे खाट पर पड़ा रहा था। उकताकर अन्त में उत्तर में उसने तीन बार यही कहा था—"मैं नहीं खाऊँगा, नहीं खाऊँगा, नहीं खाऊँगा।" यह उत्तर सुनकर दिनमणि खाट से उठ खड़ी हुई थी और उसने कुछ तथ्य की बातें बिना लाग-लपेट के रामचरण को वहीं-की-वहीं सुना दी थीं। रामचरण सबको पीता चला गया।

यथार्थ स्थिति का परिचय पाकर रामरत्न दफ्तर के कपड़ों में ही अन्दर जाकर उसे डपटकर बोले—"रामचरण, क्या बात है, जी?"

रामचरण ने पिता के स्वर पर चौंककर ऐसे देखा, जैसे कहीं किसी खास बात के होने का उसे पता न हो, और वह जानना चाहता हो।

रामचरण की आँखों में फैली इस शिशुवत् अबोधता पर पिता को और तैश हो आया। बोले—"खाना तुमने क्यों नहीं खाया जी? तुम्हारी मंशा क्या है? क्या चाहते हो? क्या घर में किसी को चैन लेने देना नहीं चाहते? सब तुम्हारी खुशामद

करें, तब तुम खाओगे ? आखिर तुम क्या चाहते हो ? रोज-रोज यह तमाशा किस लिए ?"

इसी तरह दो-तीन मिनट तक रामरत्न क्रोध में अपनी बात कहते चले गये। रामचरण खाट पर पड़ा आँखें फाड़े उन्हें देख रहा था। जैसे वह कुछ न समझ रहा हो।

पिता ने वहीं से पत्नी को हुक्म देकर कहा—"लाना तो खाने को, देखें, कैसे नहीं खाता है ?"

दिनमणि खाना ले गयी और पिता ने पुत्र को कहा—"अब और तमाशा न कीजिये। हम समझते थे कि आप समझते हैं। लेकिन दीखता है कि आप इसी तरह बाज आइयेगा।"

रामचरण तत्क्षण न उठता दिखाई दिया तो कड़ककर बोले—"सुना नहीं आपने, या अब चपत लगे ?"

रामचरण सुनकर एक साथ उठकर बैठ गया। उसके मुख पर भय नहीं, विस्मय था और वह पिता को आँख फाड़कर चकित बना-सा देख रहा था।

खाने की थाली आयी और सामने उसकी खाट पर रख दी गयी। पर उसकी ओर रामचरण ने हाथ बढ़ाने में शीघ्रता नहीं की।

पिता ने कहा—"अब खाते क्यों नहीं हो ? देखते तो हो कि मैंने दफ्तर के कपड़े भी नहीं उतारे, क्या तुम्हारे लिए कयामत तक यहीं खड़ा रहूँगा। चलो, शुरू करो।"

रामचरण फिर कुछ देर पिता को देखता रहा, अंत में बोला—"मुझे भूख नहीं है।"

"कैसे भूख नहीं है ?" पिता ने कहा—"सबेरे से कुछ नहीं खाया । जितनी भूख हो उतना खाओ ।"

रामचरण ने उन्हीं फटी आँखों से पिता को देखते हुए कहा—"भूख बिल्कुल ही नहीं है ।"

पिता अब तक जब्त से काम ले रहे थे । लेकिन यह सुनकर उनका धैर्य छूट गया और उन्होंने एक चाँटा कनपटी पर दिया, कहा—"मक्कारी न करो, सीधी तरह खाने लग जाओ ।"

इस पर रामचरण बिल्कुल नहीं रोया, न शिकायत का भाव उस पर दिखाई दिया । वह शांत भाव से थाली की तरफ हाथ बढ़ाकर टुकड़ा तोड़ने लगा । माता और पिता दोनों पास खड़े हुए देख रहे थे । रामचरण का मुँह सूखा था और ऐसा लगता कि कौर उससे चबाया नहीं जा रहा है। इस बात पर उसके पिता को तीव्र क्रोध आया, पर जाने किस विधि वह अपने क्रोध को रोके रह गये ।

पाँच-सात कौर खाने के बाद रामचरण सहसा वहाँ से उठा, जल्दी-जल्दी चलकर बाहर आया, नाली पर पहुँचकर सब कै कर बैठा ।

पिता यह सब देख रहे थे। मुँह साफ करके रामचरण लौटा तो पिता ने कठिनाई से अपने को वश में करके कहा—"अच्छा हुआ । कै तो अच्छी चीज है । अब स्वस्थ हो गये होगे, लो अब खाओ ।"

रामचरण ने आँखों में पानी लाकर कहा—"मुझे भूख बिल्कुल नहीं है ।"

"लेकिन तुमने सबेरे से खाया ही क्या है ?" पिता ने कहा--"देखो रामचरण, यह सब आदत तुम्हारी नहीं चलेगी। जिद की हद होती है। या तो सीधी तरह खाना खा लो, नहीं तो अबसे हमसे तुम्हारा वास्ता नहीं--बोलो खाते हो ?"

रामचरण ने कहा--"मुझे भूख नहीं है।"

इस पर पिता जोर से बोले--"लो जी, ये उठा ले जाओ थाली। अब इनसे खबरदार जो तुमने कुछ कहा। हम तो इनके लिए कुछ हैं ही नहीं। फिर कहना-सुनना क्या ?"

थाली वहाँ से उठ गई और रामचरण बिना कुछ बोले हक्का-बक्का-सा पिता को देखता रह गया। पिता वहाँ से जाते-जाते पुत्र से बोले--"सुनिए अब आपका राज है, जो चाहे कीजिए, जो चाहे न कीजिए। हमने आपको इसी रोज के लिए पाला था।" कहते-कहते उनकी वाणी गद्गद हो आई। बोले--"ठीक है, जैसी आप की मर्जी। बुढ़ापे में हमें यही दिन दिखाइयेगा।"

कहते हुए पिता वहाँ से चले गए। रामचरण की आँखों में आँसू आ गए थे। पर पिता के जाने पर अपना सिर हाथों में लेकर वह वहीं खाट पर पड़ गया।

रात होती जाने लगी। पर पिता के मन का उद्वेग शान्त होने में न आता। उनको रोष था और अपने से खीज थी; वह विचारवान व्यक्ति थे। सोचते थे लड़के में दोष हमसे ही आ सकता है। त्रुटि कहीं हममें ही होगी। लेकिन ख्याल होता था--जिद अच्छी नहीं है। दिनमणि का कहना है कि लड़के को शुरू में काबू में नहीं रक्खा, इससे वह सिर चढ़ गया है। क्या

यह गलती है ? क्या डाँटना बुरा है ? लाड़ से बच्चे बेशक सँभल नहीं सकते । लेकिन, मैंने कब उसकी तरफ ध्यान दिया है। उसने कभी कुछ पूछा है तो मैंने टाल दिया है । न उसकी माँ ही समय दे पाती है । मैं समझता हूँ कि लापरवाही है जिससे उसमें यह आदत आई है ।

सोचते-सोचते उन्होंने पत्नी को बुलाया और पूछा और जिरह की । वह कहीं-न-कहीं से बच्चे से बाहर दोष को पा लेना चाहते थे । पर जिरह से कुछ फल नहीं निकला । उन्हें मालूम हुआ कि वह स्कूल से घर रोज से कुछ जल्दी ही आया था ।

"पूछा नहीं, जल्दी क्यों आया ?"

"नहीं, मैं तो उससे कुछ पूछती नहीं, मुँह लटकाए आया और चादर लेकर खाट पर लेट गया । कुछ बोला न चाला ।" तब पिता ने जोर से आवाज देकर पुकारा—"रामचरण !" सुनकर रामचरण वहाँ आ गया ।

पूछा—"तुम आज स्कूल पूरा करके नहीं आए ?"

"नहीं ।"

"पहले आ गए ?"

"हाँ ।"

"क्यों ?"

इसका उत्तर लड़के ने नहीं दिया । झुककर पास की कुर्सी का सहारा ले वह पिता को देखने लगा ।

पिता ने कहा—"सहारा छोड़ो, सीधे खड़े हो । तुम बीमार नहीं हो । और सुनो, तुम सबेरे बिना खाये गए और किसी की

बात नहीं सुनी । स्कूल बीच में छोड़कर चले आये । आये तो रूठकर पड़े रहे । और इतना कहा तो भी अब तक खाना नहीं खाया । बताओ ऐसे कैसे चलेगा ?"

लड़का चुप रहा ।

पिता जोर से बोले—"तुम्हारे मुँह में जुबान नहीं है ? कहते क्यों नहीं, ऐसे कैसे चलेगा ? बताओ, इस जिद की तुम्हें क्या सजा दी जाय ? देखते नहीं घर भर में तुम्हारी वजह से क्लेश मचा रहता है ।"

लड़का अब भी चुप ही था ।

अत्यन्त संयमपूर्वक पिता ने कहा—"देखो, मेरी मानो तो अब भी खाना खा लो और सबेरे समय पर स्कूल चले जाना । आइंदा ऐसा न हो । समझे ? सुनते हो ?"

लड़के की आँखें नीची थीं । कुछ मद्धम पड़कर पिता ने कहा—"भूख नहीं है तो जाने दो । लेकिन कल सबेरे नाश्ता करके ठीक वक्त से स्कूल चले जाना । देखो इस उम्र में मेहनत से पढ़ लोगे और माँ-बाप का कहना मानोगे तो तुम्हीं सुख पाओगे । नहीं तो पीछे तुम्हें ही पछताना होगा । लो जाओ, कैसे अच्छे बेटे हो । बोलो, खाओगे ?"

जाते-जाते रामचरण ने कहा—"मुझे भूख नहीं है ।"

पिता का जी यह सुनकर फिर खराब हो आया । लेकिन उन्होंने विचार से काम लिया और अपने को संयत रखा ।

अगले दिन देखा गया कि वह फिर समय पर नहीं उठ सका है। जैसे-तैसे उठाया गया है तो अनमने मन से काम कर रहा है। नाश्ते को कहा गया तो फिर नाश्ता नहीं ले रहा है।

पिता ने बहुत धैर्य से काम लिया। लेकिन कई बार अनुरोध करने पर भी जब रामचरण ने यही कहा कि भूख नहीं है, तो उनका धीरज टूट गया। तब उन्होंने उसे अच्छी तरह पीटा और अपने सामने नाश्ता कराके छोड़ा। उसके स्कूल चले जाने पर उनमें आत्मालोचना और कर्तव्य-भावना जागृत हुई। उन्होंने सोचा कि सायंकाल का समय वह मित्र-मण्डली से बचाकर पुत्र को दिया करेंगे। उसे अच्छी-अच्छी बात बतायेंगे और पढ़ाई की कमजोरी दूर करेंगे। पत्नी से कहकर रामचरण की आलमारी में से उन्होंने उसकी किताब और कापियाँ मँगायीं। वह कुछ समय लगाकर रामचरण की पढ़ाई-लिखाई के बारे में परिचय पा लेना चाहते थे। पहले उन्होंने पुस्तकें देखीं, फिर कापियाँ देखीं। कापियों से अन्दाजा हुआ कि उसका कम्पोजीशन बहुत खराब है और भाषा का ज्ञान काफी नहीं है। किन्तु अन्तिम कापी जो सबसे साफ और बढ़िया थी, जिस पर किसी विषय का उल्लेख नहीं था, उसको खोला तो देखते-के-देखते रह गये। सुन्दर-सुन्दर अक्षरों में पुस्तकों में से चुने हुए नीति-वाक्य बालक ने उसी कापी में अंकित किये हुए थ। जगह-जगह नीचे लाल स्याही से महत्वपूर्ण अंशों पर रेखा खींची हुई थी। उसमें पहले ही सफे पर पिता ने पढ़ा—

"बड़ों की आज्ञा सदा सुननी चाहिए और कभी उनको उत्तर नहीं देना चाहिए ।"

"दुःख सहना वीरों का काम है । अपने दुःख में सज्जन पुरुष किसी को कष्ट नहीं देते और उसे शांति से सहते हैं ।"

"रोग मानने से बढ़ता है। रोग की सबसे अच्छी औषधि निराहार है ।"

"घर ही उत्तम शिक्षालय है। सफल पुरुष पाठशाला में नहीं, जीवनशाला में अध्ययन करते हैं ।"

"दृढ़ संकल्प में जीवन की सिद्धि है । जो बाधाओं से नहीं डिगता, वही कुछ करता है ।"

पहले पृष्ठ के ये रेखांकित वाक्य पढ़कर कापी को ज्यों-की-त्यों खोले पिता सामने शून्य में देखते-के-देखते रह गए।

दफ्तर में भी वह शान्ति न पा सके। शाम को लौटे तो मानो अपने को क्षमा न कर पाते थे । घर आने पर पत्नी ने कहा—"अरे, उसे देखो तो, तब से ही कै हो रही है ।"

रामरत्न ने आकर देखा । रामचरण शांत भाव से लेटा हुआ था ।

पत्नी ने कहा—"स्कूल से आया तो निढाल हो रहा था। मुश्किल से दीवार पकड़ करके जीना चढ़ करके आया । और तब से दस बार कै हो चुकी है। पूछती हूँ तो कुछ कहता नहीं। देखो न क्या हो गया है ?"

पिता ने कहा—"रामचरण, क्या बात है ?"

रामचरण ने कहा—"कुछ नहीं, मतली है ।"

"कल भी थी ?"

"हाँ ।"

पिता को और समझना शेष न रहा । वह यह भी न पूछ सके कि ऐसी हालत में तुम दोनों रोज दो-दो किलोमीटर पैदल गए और आये । बस, उनकी आँखें भर आयीं और वह डाक्टर लाने की बात सोचने लगे ।

रामचरण ने उनकी ओर देखकर कहा—"कुछ नहीं है बाबू जी, न खाने से सब ठीक हो जायगा ।"

### प्रश्न

१—महाशय रामरत्न पढ़े-लिखे और समझदार होते हुए भी रामचरण की परिस्थिति को क्यों नहीं समझ सके थे ?

२—"शिशु, बालक, किशोर और युवक इन चारों में से किशोर (Adolescent) के विकास का परिचय माँ-बाप के लिए बहुत आवश्यक है ।" क्यों आवश्यक है ? अपने अध्यापक से चारों अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर इस 'क्यों' का उत्तर दीजिए ।

३—इस कहानी में रामरत्न को क्या आत्मशिक्षण मिला था ?

४—रामचरण के चरित्र का चित्रण कीजिए ।



## १०. रोज

[ अज्ञेय ]

स्कूल या कालेज में शिक्षा पायी हुई आजकल की लड़कियाँ जब मध्य-वर्गीय नौकरी पेशावाले गृहस्थ के घर में ब्याह कर आती हैं तो चूल्हे-चौके के एक ही प्रकार के चक्कर में दिन-रात पड़ी रहने के कारण उनका जीवन कितना नीरस और निष्प्राण बन जाता है और उनकी आत्मा में कैसी उदासी भर जाती है 'रोज' कहानी पढ़ते ही पाठकों को मानो स्वयं उस घुटन और उस मुर्दनी का स्पर्श होने लगता है। प्रभाववादी अज्ञेय की कला की यही सबसे बड़ी सफलता है। इस 'रोज' कहानी ने हिन्दी-कहानी-क्षेत्र में किसी समय हलचल मचा दी थी। जीवन के एक प्रत्यक्ष सत्य को, परिवार के एक महत्वपूर्ण पक्ष को, समाज के एक अनुपेक्षणीय तत्त्व को इस कहानी द्वारा आँखों के सामने रखकर अज्ञेय जी ने लोगों को आँखें खोलकर इस वास्तविकता को देखने-समझने के लिए मजबूर कर दिया था। यह बात सच है कि चाहे अनमेल विवाह के कारण हो या चाहे पुराने सामाजिक ढाँचे से अपने को बिलकुल ही कटी रखने के कारण हो, 'रोज' की मालती अपनी गृहस्थी में रस ले सकने लायक अपने को नहीं बना सकी है और इसके लिए कुछ हद तक वह स्वयं जिम्मेदार है, पर यह भी एक सचाई है कि इस समय के बदलते हुए समाज में बहुत-सी विवाहित स्त्रियों की यही परिस्थिति है। अज्ञेय जी ने यह समस्या हमारे सामने प्रस्तुत कर दी है, किन्तु जैसे जैनेन्द्रजी ने अपनी "आत्मशिक्षण" कहानी में एक समस्या उठाने के साथ-साथ उसका हल भी प्रस्तुत कर दिया है, अज्ञेयजी ने समस्या का कोई हल नहीं पेश किया है। जैनेन्द्रजी और अज्ञेयजी में यही अन्तर भी है। किन्तु एक

कलाकार के लिए समस्या का हल प्रस्तुत करना अनिवार्य नहीं हुआ करता। इस समस्या का हल आगे वाली "केले, पैसे और मूँगफली" कहानी में उसके अमर कलाकार अमरकान्त ने बड़ी सुघराई के साथ प्रस्तुत किया है।



दोपहर में उस घर के सूने आँगन में पैर रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो उस पर किसी शाप की छाया मँडरा रही हो; उसके वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य, अस्पृश्य, किन्तु फिर भी बोझिल और प्रकम्पमय और घना-सा फैल रहा था....।

मेरी आहट सुनते ही मालती घर से बाहर निकली। मुझे देखकर, पहिचान कर उसकी मुरझाई हुई मुख-मुद्रा तनिक से मीठे विस्मय से जगी और फिर पूर्ववत् हो गयी। उसने कहा, 'आ जाओ' और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये, भीतर की ओर चली। मैं भी उसके पीछे हो चला।

भीतर पहुँचकर मैंने पूछा, "वे यहाँ नहीं हैं?"

"अभी आये नहीं, दफ्तर में हैं। थोड़ी देर में आ जायँगे। कोई डेढ़-दो बजे आया करते हैं।"

"कब के गये हैं?"

"सबेरे उठते ही चले जाते हैं।"

मैं 'हूँ' कहकर पूछने को हुआ "और तुम इतनी देर क्या करती हो?" पर फिर सोचा, आते ही अचानक यह प्रश्न ठीक नहीं है, मैं कमरे के चारों तरफ ताकने लगा।

मालती एक पंखा उठा लायी और मुझे हवा करने लगी। मैंने आपत्ति करते हुए कहा "नहीं, मुझे नहीं चाहिये।" पर वह नहीं मानी; बोली, "वाह, चाहिए कैसे नहीं? इतनी धूप में तो आये हो। यहाँ तो--"

मैंने कहा, "अच्छा लाओ, मुझे दे दो।"

वह शायद न करने को थी, पर तभी दूसरे कमरे में शिशु के रोने की आवाज सुनकर उसने चुपचाप पंखा मुझे दे दिया और घुटनों पर हाथ टेककर एक थकी हुई 'ऊँह' करके उठी और भीतर चली गयी।

मैं उसके जाते हुए, दुबले शरीर को देखकर सोचता रहा, यह क्या है! यह कैसी छाया-सी इस घर में छायी हुई है ....।

मालती, मेरे दूर के रिश्ते की बहन लगती है, किन्तु उसे सखी कहना उचित है, क्योंकि हमारा परस्पर सम्बन्ध सख्य का ही रहा है। हम बचपन ही से इकट्ठे खेले हैं, इकट्ठे लड़े और पिटे हैं और हमारी पढ़ाई बहुत-सी इकट्ठी हुई थी। हमारे व्यवहार में सदा सख्य की स्वेच्छा और स्वच्छन्दता रही है, वह कभी भ्रातृत्व के बड़े-छोटेपन के बन्धनों से नहीं घिरा।

मैं कोई चार वर्ष बाद उसे देखने आया हूँ। जब मैंने उसे इससे पूर्व देखा था, तब वह लड़की ही थी। अब वह विवाहिता है, एक बच्चे की माँ भी है। इससे कोई परिवर्तन उसमें आया होगा और यदि आया होगा तो क्या, यह मैंने अभी तक सोचा नहीं था, यह कैसी छाया इस घर पर छायी हुई है...और विशेषतया मालती पर!

मालती बच्चे को लेकर लौट आयी और फिर मुझसे कुछ दूर बिछी दरी पर बैठ गयी। मैंने अपनी कुर्सी घुमाकर कुछ उसकी ओर उन्मुख होकर पूछा, "इसका नाम क्या है ?" मालती ने बच्चे की ओर देखते हुए उत्तर दिया, "नाम तो कोई निश्चय नहीं किया, वैसे टिटी कहते हैं।"

मैंने उसे बुलाया "टिटी ! टिटी !! आ जा" पर वह अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से मेरी ओर देखता हुआ अपनी माँ से चिपट गया और रुआँसा-सा होकर कहने लगा, "उँह-उँह-उँह ........" मालती ने फिर उसकी ओर एक नजर देखा और फिर बाहर की ओर देखने लगी। काफी देर मौन रहा। थोड़ी देर तक वह मौन तो आकस्मिक ही था, जिसमें मैं प्रतीक्षा में था कि मालती कुछ पूछे, किन्तु उसके बाद एकाएक ध्यान हुआ कि मालती ने कोई बात ही नहीं की, यह भी नहीं पूछा कि कैसे हूँ, कैसे आया हूँ, चुप बैठी है। क्या विवाह के दो वर्ष ही में, वे दिन भूल गयी या अब मुझे दूर—इस विशेष अन्तर पर—रखना चाहती है ? क्योंकि वह निर्बाध स्वच्छन्दता अब तो नहीं हो सकती। पर फिर भी ऐसा मौन, जैसा अजनबी से भी नहीं होना चाहिए।

मैंने कुछ खिन्न-सा होकर दूसरी ओर देखते हुए कहा, "जान पड़ता है, तुम्हें मेरे आने से विशेष प्रसन्नता नहीं हुई।" उसने एकाएक चौंककर कहा, 'हूँ'।

यह 'हूँ' प्रश्नसूचक था, किन्तु इसीलिए नहीं कि मालती ने मेरी बात सुनी नहीं थी केवल विस्मय के कारण। इसलिए

मैंने अपनी बात दुहराई नहीं, चुप बैठा रहा। मालती बोली ही नहीं, तब थोड़ी देर बाद मैंने उसकी ओर देखा। वह एकटक मेरी ओर देख रही थी किन्तु मेरे उधर उन्मुख होते ही उसने आँखें नीचे कर लीं। फिर भी मैंने देखा उन आँखों में कुछ विचित्र-सा भाव था; मानो मालती के भीतर कहीं कुछ चेष्टा कर रही हो ···किसी बीती हुई बात को याद करने की, किसी बिखरे हुए वायुमंडल को फिर से जगाकर गतिमान करने की, किसी टूटे हुए व्यवहार तन्तु को पुनरुज्जीवित करने की, और चेष्टा में सफल हो रही हो। वैसे, जैसे बहुत देर प्रयोग में लाये हुए अंग को एकबारगी उठाने लगे और पाये कि वह उठता ही नहीं है, चिर विस्मृति में मानो मर गया है। उतने क्षीण बल से (यद्यपि वह सारा प्राप्त बल है) उठ नहीं सकता। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो किसी जीवित प्राणी के गले में किसी मृत जन्तु का तौक डाल दिया गया है, वह उसे उतार कर फेंकना चाहे किन्तु न उतार पाये।

तभी किसी ने द्वार खटखटाये। मैंने मालती की ओर देखा, पर वह हिली नहीं। जब किवाड़ दूसरी बार खटखटाये गये, तब वह शिशु को अलग कर उठी और किवाड़ खोलने गई।

वे, यानी मालती के पति आये। मैंने उन्हें पहली ही बार देखा था। यद्यपि फोटो से पहचानता था। परिचय हुआ। मालती खाना तैयार करने आँगन में चली गई और हम दोनों भीतर बैठकर बातें करने लगे। उनको नौकरी के बारे में, उनके जीवन के बारे में, उस स्थान के बारे में, आबोहवा के बारे में और

ऐसे अन्य विषयों के बारे में, जो पहले परिचय पर उठा करते हैं--एक तरह का स्वरक्षात्मक कवच पहिन कर...।

मालती के पति का नाम है महेश्वर । वे एक पहाड़ी गाँव में सरकारी डिस्पेंसरी के डाक्टर हैं। उसी हैसियत से वे इस क्वार्टर में रहते हैं। प्रातःकाल सात बजे डिस्पेंसरी चले जाते हैं और डेढ़ या दो बजे लौटते हैं । उसके बाद दोपहर भर छुट्टी रहती है, केवल शाम को फिर घन्टा-दो-घन्टा के लिये चक्कर लगाने जाते हैं, डिस्पेंसरी के साथ के छोटे से अस्पताल में पड़े रोगियों को देखने और अन्य जरूरी हिदायतें करने। उनका जीवन भी बिलकुल एक निर्दिष्ट ढर्रे पर चलता है । नित्य वही काम, उसी तरह मरीज, रोज वही हिदायतें, वही नुसखे और वही दवाइयाँ। वे स्वयं उकताये हुए हैं और इसीलिए, साथ ही इस भयंकर गर्मी के कारण वे अपनी फुर्सत के समय में सुस्त रहते हैं।

मालती हम दोनों के लिए खाना ले आई। मैंने पूछा, "तुम नहीं खाओगी या खा चुकीं ?"

महेश्वर कुछ हँसकर बोले--"वह पीछे खाया करती है।"

पति ढाई बजे खाना खाने आते हैं, इसलिए पत्नी ३ बजे तक भूखी बैठी रहेगी।

महेश्वर खाना आरम्भ करते हुए, मेरी ओर देखकर बोले "आपको तो खाने का मजा ही क्या आवेगा, ऐसे बेवक्त खा रहे हैं।"

मैंने उत्तर दिया, "वाह, देर से खाने में तो और भी अच्छा लगता है! भूख बढ़ी हुई होती है, पर शायद मालती बहन को कष्ट होगा।"

मालती टोककर बोली—"उँह मेरे लिए तो यह नई बात नहीं है, रोज ही ऐसा होता है!"

मालती बच्चे को गोद में लिये हुए थी। बच्चा रो रहा था, पर उसकी ओर कोई भी ध्यान न दे रहा था।

मैंने कहा, "यह रोता क्यों है?"

मालती बोली, "हो ही गया है चिड़चिड़ा-सा, हमेशा ही ऐसे रोता रहता है।" फिर बच्चे को डाँटकर कहा, "चुप रह।" जिससे वह और भी रोने लगा। मालती ने भूमि पर बिठा दिया। बोली, "अच्छा ले, रो ले।" और रोटी लाने आँगन की ओर चली गई।

जब हमने भोजन समाप्त किया, तब तीन बजने वाले थे।

महेश्वर ने बताया कि उन्हें आज अस्पताल जल्दी जाना है, वहाँ एक-दो चिन्ताजनक केस आये हुए हैं, जिनका आपरेशन करना होगा। दो की शायद टाँग काटनी पड़े—Gangrene हो गया है। थोड़ी ही देर बाद वे चले गये। मालती किवाड़ बन्द कर आई और मेरे पास बैठने ही लगी थी कि मैंने कहा, अब खाना तो खा लो, मैं इतनी देर टिटी से खेलता हूँ।"

वह बोली, "खा लूँगी, मेरे खाने की कौन बात है" किन्तु चली गई। मैं टिटी को हाथ में लेकर झुलाने लगा, जिससे वह कुछ देर के लिए शान्त हो गया।

दूर, शायद अस्पताल में, तीन खड़के। एकाएक मैं चौंका। मैंने सुना, वही आँगन में बैठी, अपने आप ही एक लम्बी-सी साँस के साथ कह रही है, "तीन बज गये" मानो किसी तपस्या के बाद कोई कार्य सम्पन्न हो गया हो।

थोड़ी ही देर में मालती फिर आ गई। मैंने पूछा, "तुम्हारे लिए कुछ बचा भी था?"

"सब कुछ तो--बहुत था।"

"हाँ बहुत था--भाजी तो सारी मैं खा गया था, वहाँ कुछ बचा होगा या नहीं, यों ही रोब तो न जमाओ कि बहुत था।" मैंने हँसकर कहा।

मालती मानो किसी और विषय की बात कहती हुई बोली, "यहाँ सब्जी-वब्जी तो कुछ होती नहीं, कोई आता-जाता है तो नीचे से मँगा लेते हैं। मुझे आये पन्द्रह दिन हुए। जो सब्जी साथ लाये थे, वही अभी बर्ती जा रही है·····।"

मैंने पूछा, "नौकर कोई नहीं है?"

"कोई ठीक मिला नहीं, शायद दो-एक दिन में हो जाय।"

"बर्तन भी तुम्हीं माँजती हो?"

"और कौन?" कहकर मालती क्षण भर आँगन में जा लौट आई।

मैंने पूछा, "कहाँ गई थीं?"

"आज पानी ही नहीं है, बर्तन कैसे मँजेंगे?"

"क्यों, पानी को क्या हुआ?"

"रोज ही होता है, कभी वक्त पर तो आता नहीं। आज शाम को सात बजे आयेगा, तभी बर्तन मँजेंगे।"

"चलो तुम्हें सात बजे तक छुट्टी तो हुई", कहते हुए मैं मन ही मन सोचने लगा, "अब इसे रात के ग्यारह बजे तक काम करना पड़ेगा। छुट्टी क्या खाक हुई?"

यही उसने कहा। मेरे पास कोई उत्तर नहीं था, पर मेरी सहायता टिटी ने की। वह एकाएक फिर रोने लगा और मालती के पास जाने की चेष्टा करने लगा। मैंने उसे दे दिया। थोड़ी देर फिर मौन रहा। मैंने जेब से अपना नोटबुक निकाला और पिछले दिनों के लिए हुए नोट देखने लगा, तब मालती को याद आया कि उसने मेरे आने का कारण तो पूछा ही नहीं, और बोली, "यहाँ कैसे आये?"

मैंने कहा ही तो, "अच्छा, अब याद आया? तुमसे मिलने आया था, और क्या करने?"

तो, "दो-एक दिन रहोगे न?"

"नहीं, कल चला जाऊँगा; जाना जरूरी है।"

मालती कुछ नहीं बोली; कुछ खिन्न-सी हो गई। मैं फिर नोटबुक की तरफ देखने लगा।

थोड़ी देर बाद मुझे भी ध्यान हुआ कि मैं आया तो मालती से मिलने, किन्तु यहाँ वह बात करने को बैठी है और मैं पढ़ रहा हूँ।

पर बात भी क्या की जाय? मुझे ऐसा लग रहा है कि इस घर पर जो छाया घिरी है, वह अज्ञात रहकर भी मानो मुझे भी

वश में कर रही है। मैं भी वैसा ही नीरस, निर्जीव-सा हो रहा हूँ, जैसे यह घर, जैसे मालती।

मैंने पूछा, "तुम कुछ पढ़ती-लिखती नहीं?" मैं चारों ओर देखने लगा कि किताबें दीख पड़ें।

"यहाँ!" कहकर मालती थोड़ा-सा हँस दी। वह हँसी कह रही थी कि यहाँ पढ़ने को है क्या?

मैंने कहा, "अच्छा, मैं वापस जाकर जरूर कुछ किताबें भेजूँगा।" वार्तालाप फिर बन्द हो गया।

थोड़ी देर बाद मालती ने फिर पूछा, "कैसे आये? लारी में?"

"पैदल।"

"इतनी दूर! बड़ी हिम्मत की!"

"आखिर तुमसे मिलने आया था।"

"ऐसे ही आये हो?"

"नहीं, कुली पीछे आ रहा है, सामान लेकर। मैंने सोचा बिस्तर तो ले ही चलूँ।"

"अच्छा किया, यहाँ तो बस।" कहकर मालती चुप हो गई। फिर बोली, "तब तुम थके होगे, लेट जाओ।"

"नहीं, बिलकुल नहीं थका।"

"रहने भी दो, थके नहीं हैं। थके हैं।"

"और तुम क्या करोगी?"

"मैं बर्तन माँज रही हूँ, पानी आयेगा तो धुल जायँगे।"

मैंने कहा, "वाह" क्योंकि कोई बात मुझे सूझी नहीं।

थोड़ी देर में मालती उठी और चली गई, टिटी को साथ लेकर तब मैं भी लेट गया और छत की ओर देखने लगा और सोचने लगा·····मेरे विचारों के साथ आँगन से आती हुई बर्तनों के घिसने की खन-खन ध्वनि मिलकर एक विचित्र एकस्वरता उत्पन्न करने लगी, जिसके कारण मेरे अंग धीरे-धीरे ढीले पड़ने लगे, मैं ऊँघने लगा।

एकाएक वह एकस्वरता टूट गई—मौन हो गया। इससे मेरी तन्द्रा भी टूटी, मैं उस मौन में सुनने लगा।

चार खड़क रहे थे, और इसी का पहला घण्टा सुनकर मालती रुक गई थी।

वही तीन बजे वाली बात मैंने फिर देखी, अब की और भी उग्र रूप में सुना, मालती बिलकुल अनैच्छिक, अनुभूतिहीन, नीरस, यंत्रवत्—वह भी थके हुए यंत्र की तरह के स्वर में कह रही है, "चार बज गए।" मानो इस अनैच्छिक समय गिनने में ही उसका मशीन-तुल्य जीवन बीतता है, वैसे ही जैसे मोटर का स्पीडोमीटर यंत्रवत् फासला नापता जाता है और यंत्रवत् विश्रान्त स्वर में कहता है (किससे) कि मैंने अपने अमित शून्य पथ का इतना अंश तै कर लिया न जाने कब, कैसे मुझे नींद आ गई।

× × ×

तब छः कभी के बज चुके थे, जब किसी के आने की आहट से मेरी नींद खुली और मैंने देखा कि महेश्वर लौट आए हैं और उनके साथ ही बिस्तर लिए हुए मेरा कुली। मैं मुँह धोने का पानी

माँगने ही को था कि मुझे याद आया—पानी नहीं होगा। मैंने हाथों से मुँह पोंछते-पोंछते महेश्वर से कहा, "आपने बड़ी देर की ?"

उन्होंने किंचित् ग्लानि-भरे स्वर में कहा, "हाँ, आज वह Gangrene का आपरेशन करना ही पड़ा। एक कर आया हूँ, दूसरे को एम्बुलेन्स में बड़े अस्पताल भेजवा दिया है।" मैंने पूछा, "Gangrene कैसे हो गया ?"

"एक काँटा चुभा था, उसी से हो गया। बड़े लापरवाह लोग होते हैं यहाँ के।"

मैंने पूछा, "यहाँ आपको केस अच्छे मिल जाते हैं ? आय के लिहाज से नहीं, डाक्टरी के अभ्यास के लिए ?"

बोले, "हाँ मिल जाते हैं। यही Gangrene, हर दूसरे-चौथे दिन एक केस आ जाता है। नीचे बड़े अस्पतालों में भी…।"

मालती आँगन से ही सुन रही थी। अब आ गई, बोली, "हाँ, केस बनाते क्या देर लगती है ? काँटा चुभा था, उस पर टाँग कटानी पड़े, यह भी कोई डाक्टरी है। हर दूसरे दिन किसी की टाँग, किसी की बाँह काट आते हैं, इसी का नाम है, अच्छा अभ्यास।"

महेश्वर हँसे। बोले, "न काटें तो उनकी जान गँवायें ?"

"हाँ, पहले तो दुनियाँ में काँटे ही न होते थे। आज तक तो सुना नहीं था कि काँटों के चुभने से लोग मर जाते हों।"

महेश्वर ने उत्तर नहीं दिया, परन्तु मुस्करा दिए। मालती मेरी ओर देखकर बोली, "ऐसे ही होते हैं डाक्टर! सरकारी अस्पताल है न, क्या परवाह है ? मैं तो रोज ऐसी बातें सुनती

हूँ। अब कोई मर-मुर जाय, तो ख्याल ही नहीं होता। पहले रात-रात भर नींद नहीं आया करती थी।"

तभी आँगन में खुले हुए नल ने कहा, "टिप-टिप-टिप।"

मालती ने कहा, "पानी!" और उठकर चली गई। खन-खन शब्द से हमने जाना, बर्तन धोए जा रहे हैं।

टिटी महेश्वर की टाँगों के सहारे मेरी ओर देख रहा था। अब एकाएक उन्हें छोड़कर मालती की ओर खिसकता हुआ चला। महेश्वर ने कहा, "उधर मत जा।" और उसे गोद में उठा लिया। वह मचलने और चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा।

महेश्वर बोले, "अब रो-धोकर सो जायगा, तभी घर में चैन पड़ेगी।"

मैंने कहा, "आप लोग भीतर ही सोते हैं? गर्मी तो बहुत पड़ती है?"

"होने को तो मच्छर भी बहुत होते हैं, पर ये लोहे के पलंग उठाकर कौन बाहर ले आये? अब की नीचे जायँगे तो चारपाइयाँ भी ले आयेंगे।" फिर कुछ रुक कर बोले, "आज तो बाहर ही सोयेंगे। आपके आने का इतना ही लाभ होगा।"

टिटी अभी तक रोता ही जा रहा था। महेश्वर ने उसे एक पलंग पर लिटा दिया और पलंग बाहर खींचने लगे। मैंने कहा, "मैं मदद करता हूँ", और दूसरी ओर से पलंग उठाकर बाहर निकलवा दिया।

अब हम तीनों, महेश्वर, टिटी और मैं, दो पलंगों पर बैठ गए और वार्तालाप के उपयुक्त विषय न पाकर टिटी से खेलने

लगे। बाहर आकर वह कुछ चुप हो गया था, किन्तु बीच-बीच में जैसे एकाएक कोई भूला हुआ कर्तव्य याद करके रो उठता था और फिर एकदम चुप हो जाता था, और कभी-कभी हम हँस पड़ते थे, या महेश्वर उसके बारे में कुछ बात कह देते थे।

मालती बर्तन धो चुकी थी। जब वह उन्हें लेकर आँगन की एक ओर चली, तब महेश्वर ने कहा, "थोड़े-से आम लाया हूँ, वह भी धो लेना।"

"कहाँ हैं ?"

"अँगीठी पर रक्खे हैं, कागज में लिपटे।"

मालती ने भीतर जाकर आम उठाए और अपने आँचल में रख लिए। जिस कागज में वे लिपटे हुए थे, वह किसी पुराने अखबार का टुकड़ा था। मालती चलती-चलती सन्ध्या के उस क्षीण प्रकाश में उसी को पढ़ती जाती थी। वह नल के पास जाकर खड़ी हो उसे पढ़ती रही। जब दोनों ओर पढ़ चुकी तब उसे फेंक आम धोने लगी।

मुझे अचानक यह याद आया, बहुत दिनों की बात थी। जब हम सभी स्कूल में भर्ती हुए थे। जब हमारा सबसे बड़ा सुख, हमारी सबसे बड़ी विजय थी, हाजिरी हो चुकने के बाद चोरी से स्कूल से भाग जाना और स्कूल से कुछ दूर पर आम के बगीचे में पेड़ों पर चढ़कर कच्ची अमियाँ तोड़-तोड़ कर खाना। मुझे याद आया, कभी जब मैं भाग जाता था, मालती नहीं आ पाती थी, तब मैं खिन्न मन लौट जाया करता था।

मालती कुछ नहीं पढ़ती थी, उसके माता-पिता तङ्ग थे। एक दिन उसके पिता ने उसे एक पुस्तक लाकर दी और कहा कि इसके बीस पेज रोज पढ़ा करो। हफ्ते भर बाद में देखूं कि इसे समाप्त कर चुकी हो, नहीं तो मार-मार कर चमड़ी उधेड़ लूँगा। मालती ने चुपचाप किताब ले ली, पर क्या उसने पढ़ी? वह नित्य ही उसके दस पन्ने फाड़कर फेंक देती। अब आठवें दिन उसके पिता ने पूछा, "किताब समाप्त कर ली?" उत्तर मिला, "हाँ, कर ली।" पिता ने कहा, "लाओ, मैं प्रश्न करूँ।" चुप खड़ी रही। पिता ने फिर कहा, तो उद्धत स्वर में बोली, "किताब मैंने फाड़कर फेंक दी है। मैं पढ़ूँगी नहीं।"

उसके बाद वह बहुत पिटी। पर वह अलग बात है, इस समय मैं यही सोच रहा था कि वही उद्धत और चंचल मालती आज कितनी सीधी हो रही है, कितनी शान्त और एक अखबार के टुकड़े को तरसती है, यह क्या है, यह····

तभी महेश्वर ने पूछा, "रोटी कब बनेगी?"

"बस अभी बनेगी।"

पर अब की जब मालती रसोई की ओर चली तब टिटी की कर्तव्य-भावना बहुत विस्तीर्ण हो गई। वह मालती की ओर हाथ बढ़ाकर रोने लगा और नहीं माना, नहीं माना। मालती भी गोद में लेकर चली गई। रसोई में बैठकर एक हाथ से थपकाने और दूसरे हाथ से कई एक छोटे-छोटे डिब्बे उठाकर अपने सामने रखने लगी।

और हम दोनों चुपचाप रात्रि के भोजन की, एक दूसरे से कुछ कहने की और न जाने किस-किस न्यूनता की पूर्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

× × ×

हम भोजन कर चुके थे और बिस्तरे पर लेट गये थे। टिटी सो गया था। मालती उसे पलंग की ओर मोमजामा बिछाकर उस पर लिटा गई थी। सो तो गया था, पर नींद में कभी-कभी चौंक उठता था। एक बार उठकर बैठ भी गया था पर तुरन्त ही लेट गया। मैंने महेश्वर से पूछा, "आप तो थके होंगे, सो जाइये।"

वे बोले "थके तो आप होंगे, ३० किलोमीटर पैदल चलकर आये हैं।"

किन्तु उनके स्वर ने मानो जोड़ दिया; "थका तो मैं भी हूँ।" मैं चुप हो रहा, थोड़ी देर में किसी अपर संज्ञा ने मुझे बताया, वे ऊँघ रहे थे। तब लगभग १०½ बजे थे। मालती भोजन कर रही थी।

मैं थोड़ी देर मालती की ओर देखता रहा, वह किसी विचार में लीन हुई धीरे-धीरे खा रही थी। फिर मैं इधर-उधर खिसक कर पलंग पर आराम से होकर, आकाश की ओर देखने लगा।

पूर्णिमा थी, आकाश निरभ्र था।

मैंने देखा उस सरकारी क्वार्टर की दिन में अत्यन्त शुष्क और नीरस लगने वाली स्लेटी छत की स्लेटें भी चमक रही हैं,

अत्यन्त शीतलता और स्निग्धता से चमक रही हैं। मानो चन्द्रिका उन पर से बहती हुई आ रही हो, झर रही हो।

मैंने देखा, पवन में चीड़ के वृक्ष—गर्मी से सूख कर मटमैले हुए वृक्ष—धीरे-धीरे गा रहे हैं—कोई राग, जो कोमल है किन्तु करुण नहीं, अशांतिमय है, किन्तु उद्वेगमय नहीं……।

मैंने देखा दिन भर की तपन, अशांति, थकान, दाह, पहाड़ों में से भाप की नाईं उठकर वातावरण में खोये जा रहे हैं और ऊपर से एक कोमल, शीतल, सम्मोहक आह्लाद-सा बरस रहा है, जिसे ग्रहण करने के लिए पर्वत-शिशुओं ने अपनी चीड़ वृक्ष रूपी भुजाएँ आकाश की ओर बढ़ा दी हैं।

यह सब मैंने ही देखा—अकेले मैंने। महेश्वर ऊँघ रहे थे। और मालती उस समय भोजन से निवृत्त होकर दही जमाने के लिए मिट्‌टी के बर्तन गर्म पानी से धो रही थी और कह रही थी, बस अभी छुट्टी हुई जाती है। और मेरे कहने पर कि ग्यारह बजने वाले हैं, धीरे से सिर हिलाकर जता रही थी कि रोज ही इतने बज जाते हैं। मालती ने यह सब कुछ नहीं देखा। मालती का जीवन अपनी रोज की गति में बहा जा रहा था और एक चन्द्रमा की चन्द्रिका के लिए, एक संसार के सौन्दर्य के लिए, रुकने को तैयार नहीं था।

चाँदनी में शिशु कैसा लगता है? इस अलस जिज्ञासा से मैंने टिटी की ओर देखा। और वह एकाएक मानो किसी शैशवोचित ममता से उठा और खिसककर पलंग के नीचे गिर पड़ा

और चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। महेश्वर ने चौंककर कहा, "क्या हुआ?" मैं झपटकर उसे उठाने दौड़ा। मालती रसोई से बाहर निकल आई। मैंने उस 'खट' शब्द को याद करके धीरे से करुणाभरे स्वर में कहा, "चोट लग गई, बहुत बेचारे के......।"

यह सब मानो एक ही क्षण में, एक ही क्रिया की गति में हो गया।

मालती ने रोते हुए शिशु को मुझसे लेने को हाथ बढ़ाते हुए कहा, "इसके चोटें लगी ही रहती हैं। रोज ही गिर पड़ता है।"

एक छोटे क्षण भर के लिए मैं स्तब्ध हो गया। फिर एका-एक मेरे मन में, मेरे समूचे अस्तित्व ने, विद्रोह के स्वर में कहा—मेरे मन के भीतर ही। बाहर शब्द भी नहीं निकला।

"माँ, युवती माँ, यह तुम्हारे हृदय को क्या हो गया है, जो तुम अपने एकमात्र बच्चे के गिरने पर ऐसी बात कह सकती हो और यह अभी, जब तुम्हारा सारा जीवन आगे है।"

और तब एकाएक मैंने जाना कि यह भावना मिथ्या नहीं है। मैंने देखा कि सचमुच उस कुटुम्ब में कोई भयंकर छाया घर कर गई है, उनके जीवन के इस पहले ही यौवन में घुन की तरह लग गई है, उनका इतना अभिन्न अङ्ग हो गई है कि वे इसे पहिचानते ही नहीं। उसी की परिधि में घिरे हुए चल रहे हैं। इतना ही नहीं, मैंने उस छाया को देख लिया।

इतनी देर में पूर्ववत् शान्ति हो गई थी। महेश्वर फिर लेटकर ऊँघ रहे थे। टिटी मालती के लेटे हुए शरीर से चिपककर

चुप हो गया था; यद्यपि कभी एकाध सिसकी छोटे से शरीर को हिला देती थी, मैं भी अनुभव करने लगा था कि बिस्तर अच्छा-सा लग रहा है। मालती चुपचाप ऊपर आकाश में देख रही थी। किन्तु क्या चन्द्रिका को, तारों को?

तभी ग्यारह का घन्टा बजा। मैंने अपनी भारी हो रही पलकें उठाकर अकस्मात् किसी अस्पष्ट प्रतीक्षा से मालती की ओर देखा। ग्यारह के घन्टे के पहले खड़कन से मालती की छाती एकाएक फफोले की भाँति उठी और धीरे-धीरे बैठने लगी और घन्टा-ध्वनि के कम्पन के साथ ही मूक हो जाने वाली आवाज में उसने कहा, "ग्यारह बज गये।"

**प्रश्न**

१—"रोज" कहानी की रचना में अज्ञेयजी का क्या उद्देश्य है?

२—इस कहानी के "रोज" शीर्षक का क्या उद्देश्य है?

३—मालती की निराशापूर्ण मनोदशा के क्या कारण हैं? विचार कीजिये।

४—"रोज" वाली मालती के साथ "मछुए की बेटी" वाली तिन्नी की तुलना कीजिये।

---

## ११. दुःख का ताज

### [ हरिशंकर परसाई ]

हरिशंकर परसाई की यह कहानी आज की 'नई कहानी' की सभी विशेषताओं का (जिनका इस संग्रह की भूमिका में उल्लेख हो चुका है) प्रतिनिधित्व करने वाली हिन्दी की एक बहुत ही मौलिक और अद्वितीय कहानी है। "दुःख का ताज" तथा "पैसे, केले और मूंगफली" (इस संग्रह की अंतिम कहानी) ये दो कहानियाँ ही हमारी आज की तरुणाई के सभी मनोभावों—आशा-निराशा, विश्वास-अविश्वास, प्रेम-घृणा और संयम तथा विद्रोह—को एक साथ ही प्रस्तुत कर देती हैं।

"दुःख का ताज" दो ऐसे तरुणों की कहानी है जिनके एक-दूसरे के सिवा अपना और कोई नहीं है। ये एक प्रकार से सर्वहारा हैं, पर इनमें किसी प्रकार की दुर्वासना नहीं है। इन्हें किसी के प्रति आस्था नहीं है, किसी सुख की वांछा नहीं है, इन्हें पैसा जोड़ने की इच्छा नहीं है। एक शब्द में इन्ह किसी बात की परवाह नहीं है। पर ये दयनीय बनकर किसी की कृपा की याचना नहीं करते हैं। समस्त अभावों में भी इन्हें कोई अभाव नहीं है क्योंकि इनमें तरुणाई है, इनमें आत्मबल है, इनमें स्वाभिमान है। इन्हें अपने स्वाभिमान का भरोसा है, और अपनी गरीबी का गर्व है। इनकी सारी पूँजी इनकी गरीबी ही है; और इनकी सारी कमाई है इनके भोगे हुए दुःख। दोनों ही अपनी इस कमाई को एक-दूसरे से बढ़कर मानते हैं।

यही कारण है कि जब गोविन्द को रामेश्वर यह बता देते हैं कि उन्होंने अपने जीवन में गोविन्द से अधिक दुःख भोगे हैं तब गोविन्द तिलमिला उठते हैं और उन्हें लगता है कि जसे उनका दुःख का ताज उनके सिर से छीन लिया गया हो! अपनी झुंझलाहट और दयनीय किंकर्त्तव्यविमूढ़ता में वह

रामेश्वर पर लातों और घूसों से प्रहार करने लगते हैं और रामेश्वर उनकी दयनीयता को समझकर कुछ प्रतिकार नहीं करता वरन् सारी मार चुपचाप खा लेता है। गोविन्द फिर हांफता हुआ बैठकर रोने लगता है। अपनी निष्कलुष रिक्तता की करुणामय बेबसी में उस समय रोता हुआ गोविन्द, प्रेमचन्द की "कफन" कहानी वाले; पुत्रवधू के कफन की खरीदारी के लिए लाये हुए पैसों को शराब पी डालने के बाद नशे में नाच-नाच कर थककर जमीन पर गिरे हुए घोसू और माधव की याद दिलाता है।



कोई क्षण ऐसा होता है जब मनुष्य अपनी आत्मा को निकाल कर हथेली पर रख लेना चाहता है; उसे पूर्ण निर्वैयक्तिक भाव से निर्लिप्त रहकर, चारों ओर से जी भर देखना चाहता है; उसे दूसरों को दिखाते हुए घूमना चाहता है। ऐसी घड़ी में संकोच की दीवारें सहसा टूट जाती हैं, लाज-शरम के परदे हट जाते हैं और मनुष्य अपने सच्चे नंगे रूप में खड़ा हो जाता है।

वह रात ऐसी ही थी। दिसम्बर का महीना। कड़ाके की ठंड। शाम को तीन घंटे पानी बरसा था। शरीर को छेदने वाली ठंडी गीली हवा सनसना रही थी। दूसरी मंजिल पर उखड़ी सीमेंट के फर्श पर बिस्तर बिछाये वे दोनों एक कम्बल में लिपटे पड़े थे। सँकरे कमरे की दीवारें पैर और सिर को लगभग छूती थीं। कम्बल दो थे मगर फटे थे और उन दोनों को उन्होंने ऐसी चतुराई से दोनिया लिया था कि वे परस्पर एक दूसरे के छिद्रों को ढाँके हुए थे।

एक दूसरे के छिद्रों को ढाँकने वाले कम्बलों की तरह ही ये दोनों मित्र थे। एक ही दफ्तर में काम करते थे और एक फर्श पर, एक छत की छाया में, एक बिस्तर पर, एक ही कम्बल में लिपटे पड़े रहते थे। मामूली पढ़े-लिखे ये दोनों 'एम्प्लायमेंट एक्सचेंज' की धूल महीनों छानकर अब ८-८ महीने के लिए नौकरी पा गए थे। यह पाँचवाँ महीना चल रहा था। तीन महीने बाद फिर दोनों सड़क पर होंगे; फिर कहीं २-४ माह की नौकरी। वर्षों से यही क्रम चल रहा था।

दिन भर दफ्तर में काम करते, शाम को किसी सस्ते होटल में खाना खा लेते, थोड़ी देर यहाँ-वहाँ घूमते; सिनेमा घरों में दीवार पर चिपके इश्तिहारों की तस्वीरें जी भर देखते और आकर फटे दुहरे कम्बल में सो जाते। ऐसा नहीं था कि नए सस्ते कम्बल खरीद नहीं सकते थे। खरीदने का मन नहीं होता था। १०-५ रुपये ज्यादा देकर बड़े कमरे में भी रह सकते थे पर इस गन्दे-अन्धे कमरे को वे छोड़ना नहीं चाहते थे। इसका उखड़ा-उखड़ा फर्श, खुदी हुई गन्दी दीवार; बिना चटखनी की खिड़की; गन्दे कोने; भनभनाते मच्छर; ये सब उन्हें अच्छे लगते थे। खटमल-भरे गन्दे बिस्तर पर इस कमरे में सोने में उन्हें एक सुख और गर्व का अनुभव होने लगा था। वे इस गन्दगी को; दरिद्रता को गर्व-पूर्वक सिर पर धारण किए घूमते थे, जैसे कोई ताज पहिने हों।

हवा के झोंके ने खिड़की को धक्का मारा और दोनों पल्ले को दबाये, जो ईंट रखी थी, उसे गिरा दिया। खिड़की खुल गई

और छूरी जैसी एक वायु-तरङ्ग ने कम्बल को चीरकर उनके शरीर को छद दिया।

गोविन्द पड़े-पड़े फुटफुटाया "धत्तेरी हवा की····यार, जरा ईंट फिर से रख देना।"

रामेश्वर बोला, "अरे बापरे, इतनी ठंड में मुझसे नहीं उठा जायगा। घंटे भर में फिर शरीर गरम होगा।"

गोविन्द ने मनाया, "मैं तुझे गरम कर दूँगा। आकर चिपट जाना। खुली रही, तो सबेरे निमोनिया से दोनों मरे मिलेंगे।"

रामेश्वर बड़बड़ाता उठा। मकान-मालिक को खूब गालियाँ दीं, "साला, हरामखोर, हर महीना किराया झपट लेता है और एक साँकल लगवाने का नाम नहीं लेता। अब की पहिली को आयेगा तो जूते मारकर निकाल दूँगा।" ईंट जमाकर रखी और सी-सी करता एकदम कम्बल में घुस गया।

दोनों बड़ी देर मौन पड़े रहे। ठंड ने जैसे दोनों के मन को बर्फ-सा जमा दिया था। ठंडा अवसाद चारों ओर से हृदय को घेरे था। बड़ी देर तक वे पड़े-पड़े न जाने क्या-क्या सोचते रहे। फिर दोनों के मुँह से अकस्मात् निकला, "यह भी क्या जिन्दगी है!" फिर दोनों मौन हो गये। रात की मौन भयानकता ने उनके मन की पीड़ा को उभार दिया था; भुगते दुःख ऊपर आ गए, लापरवाही से ढँकी उनकी दुदर्शा एकदम उठकर जैसे सामने खड़ी हो गई थी।

गोविन्द कहने लगा, "तुम नहीं जानते, मैंने कितने दुख भोगे हैं। मैं मैट्रिक पास हुआ, तभी पिताजी भी बीमार पड़े।

मैंने उनकी छटपटाहट देखी है। वे जीना चाहते थे। मगर सहारा कहाँ से आता? दवा-दारू को पैसा ही कहाँ था! उनका वह सूखा हुआ, दयनीय मुख, वे निराश आँखें, अभी मेरी आँखों के सामने झूल जाती हैं। जब किसी बीमार वृद्ध को देखता हूँ, तो मुझे अपने पिता का मरने के पहिले का चेहरा याद आ जाता है, मैं रो पड़ता हूँ।"

उसका गला भर आया। जरा रुककर बोला, "और मरते समय उनकी आँखों की वह लाचारी! मानो कह रहे हों कि बेटा, मैं तुम लोगों के लिए जीना तो चाहता हूँ, पर मौत से लड़ने लायक शक्ति ही नहीं रह गई है! अब तुम्हारा क्या होगा? और उसके बाद से दोस्त, हम लोग भूखे ही मरते रहे हैं। माँ ने घर के बर्तन बेंचकर भाई-बहिनों का पेट कुछ दिन भरा। मैं मारा-मारा फिरता रहा, नौकरी की तलाश में। रेलवे प्लेटफार्म की बेंचों पर २४-२४ घंटे भूखा पड़ा रहा हूँ। फिर पेट की आग में झोंकने के लिए होटल से पूड़ियों की चोरी की और पिटा; पर पिटते-पिटते भी पूड़ी मुँह में भर ली!" रामेश्वर ने टोका, "छोड़ भी यार! यह तो हमेशा का रोना है। कोई और बात कर।"

गोविन्द कराह कर बोला, "और मेरे पास क्या है! प्यार की बात करूँ? भूख से बचने में ही जिसका हर क्षण लगा रहा है, उसे प्यार करने की फुरसत कैसे मिलेगी? तुम नहीं जानते, तुमने दुख भोगा कहाँ है! भाई और बहिन को दवाई के अभाव में प्राण त्यागते देखा है मैंने! मैं बैठा-बैठा टुकुर-टुकुर देखता रहा और वे एक के बाद एक मरते गए। और अब माँ और

एक बहिन घर में है। मेरी नौकरी का ठिकाना नहीं। बहिन जवान हो गई है। मैं उसके डर के मारे घर नहीं जाता। उसे देखता हूँ तो जैसे कलेजे में तेजाब उतर जाता है। यह उसकी ससुराल में रहने की उम्र है। पर बिना पैसे के कौन उससे शादी करेगा? और अब तीन महीने बाद बेकार हो जाऊँगा, तब घर क्या मुँह लेकर जाऊँगा?"

उसकी आँखें सजल हो गईं और गहरी साँस लेकर वह दुःख के आवेग में रामेश्वर से चिपट गया और बोला, "इससे तो मौत अच्छी!"

रामेश्वर जैसे पत्थर हो गया था। वह हिला-डुला तक नहीं। दुखी मित्र के ऊपर सहानुभूति का हाथ तक नहीं फेरा। गोविन्द का दुखी मन तड़पकर रामेश्वर का सहारा लेना चाह रहा था, पर उसे लगा कि उसने निष्प्राण पत्थर को कलेजे से लगा लिया हो।

रामेश्वर की समस्त चेतना अपने भीतर के उठ रहे आवेग को सँभालने में लगी थी। वह गोविन्द की दुःख-कथा सुन रहा था। सुनते-सुनते उसके हृदय के किसी कोने से दर्द उठा। धीरे-धीरे उसने उसकी पूरी चेतना को अभिभूत कर दिया। उस ठंडी रात में उसे ऐसा लगा जैसे उसका शरीर जल रहा हो। दुखी वह भी था और शायद वह दुःख ही था, जो इन दोनों को इतने समीप लाया था। परस्पर छिपाने लायक उनके पास कुछ नहीं था। वे एक दूसरे की दुखती रगों को जानते थे, एक दूसरे

से कितने बार अपने दुःख कह चुके थे। पर आज तो जैसे उनके दुखी प्राण निकल कर बाहर मँडराना चाहते हैं।

रामेश्वर मौन रहने का प्रयास कर रहा था। वह अपने दुःख नहीं कहना चाहता था। पर उसने सब कुछ कहाँ कहा था? कुछ अनकहा रह गया था! घर की गरीबी, भुखमरी, बेकारी, मौत; ये सब दोनों ने भुगती थीं! पर रामेश्वर को कितने ही दुःख थे, जो उसने अभी तक छिपा रखे थे। पर आज ठंडी रात, सनसनाती हवा और गोविन्द के हाल ही के दुःख के विवरण से उसके मन के सब बन्धन टूट गए।

अपने कलेजे से चिपटे इस मित्र के प्रति उसके मन में करुणा जाग्रत नहीं हुई। और मौकों पर वे एक दूसरे को समझाते थे, सांत्वना देते थे, धीरज बँधाते थे। पर आज रामेश्वर कुछ और सोच रहा था--"ऐसा रोता है, जैसे सारी दुनिया का दुःख इसी ने भोगा है! अभी दुःख इसने देखा कहाँ है? यह समझता है कि मैं बहुत मजे में हूँ! और यही दुखी है!"

और तब वह सहसा बोला, "तूने अभी कुछ नहीं भुगता है। जब भीतर पेट की ज्वाला धू-धू करे और बाहर मुँह भी काला हो जाय, तब आदमी को मौत से प्यारा कुछ और लगता नहीं है। मगर मैं जी रहा हूँ। कभी-कभी मरा बाप जिन्दा बाप से अच्छा होता है। मेरे पिता जिन्दा हैं, लेकिन मेरी तनख्वाह के आधे पैसे उनकी दवा और शराब में चले जाते हैं। जिन्दगी भर पीते रहे और एक औरत को रखे रहे। घर जाने में मेरा प्राण क्यों काँपता है? जानते हो? मेरे वे दो भाई-बहिन जिनकी आँखों

म भूख झाँकती है, मुझसे चिपट जाते हैं, तो मन में आता है कि इसी दम मर जाऊँ। वह भयानक गरीबी और भुखमरी! और भाई साब, तुम्हें अपनी बिनब्याही बहिन की फिक्र है। पर बिनब्याही बहिन उस बहिन से अच्छी है, जो परिवार के मुँह पर कालिख पोत कर चली जाय। ससुराल से भाग आई थी मेरी बहिन; और न जाने किसके साथ चली गई। दो साल हो गये। कोई पता नहीं। गाँव-जाति में कोई हमारा मुँह नहीं देखना चाहता। कोई पास बिठाकर चुल्लू भर पानी पिलाने वाला नहीं। मैं क्या जी रहा हूँ? अरे, मैं तो मर चुका। यह तो मेरी लाश है जिसको निचोड़ कर मेरा बाप शराब पीता है और जिसके मांस को चीथकर परिवार भूख शांत करता है।"

वह जरा देर चुप हो गया। न जाने क्या हुआ गोविन्द को। वह एकदम उससे दूर हट गया। बिस्तर के दूसरे कोने पर कम्बल के अन्तिम छोर को दबाये निश्चल पड़ा रहा। एक विचित्र प्रकार की घृणा उसे रामेश्वर से हुई। एक घनीभूत विकर्षण पैदा हो गया। ज्यों-ज्यों रामेश्वर अपने दुःख का तार चढ़ाता जाता गोविन्द के मन से सहानुभूति घटती जाती; क्रोध बढ़ता जाता।

रामेश्वर ने कहा, "इतना भुगता है मैंने। कोई और होता तो उसकी राख भी उड़ गई होती।"

गोविन्द अनमने भाव से बोला, "अपना-अपना दुःख सबको बड़ा लगता है।"

रामेश्वर को चिढ़ आ गई, "मेरे जैसा भुगतते, तब पता चलता। मेरे पास क्या रह गया? भूख, बेइज्जती, हड्डी-तोड़

काम और समय से पहिले मौत ! तुझे तो मुझसे एक-चौथाई भी नहीं भोगना पड़ा ।"

दोनों की स्पर्धा-सी चल रही थी । दोनों दुखी थे और दुःख को गर्वपूर्वक वहन करते थे । जिसके पास कुछ नहीं होता, अनन्त दुःख होता है, वह धीरे-धीरे शहादत के गर्व के साथ कष्ट भुगतता है । जीने के लिए आधार चाहिए । और सब अभाव में यह दुःख ही जीवन का आधार हो जाता है । वे उसे जकड़े रहते हैं, उसमें गौरव समझते हैं ।

वे दोनों दुःख का आधार पकड़े थे । गोविन्द समझता था कि मैंने अधिक दुःख भोगा है और रामेश्वर सोचता था कि अभी यह जानता नहीं है कि मैंने और क्या भुगता है । कह दूँगा तब जानेगा कि मेरे जैसे जिन्दगी वह एक दिन भी नहीं जी सकता ।

आज उसने कह दिया और कुछ इस भाव से ताना मारा जैसे गोविन्द के सिर का मुकुट छीनकर अपने सिर पर रख लिया हो ।

गोविन्द के मन में रामेश्वर के प्रति घोर कटुता भर गई । उसे लगा कि वह शत्रु के साथ एक ही कम्बल में सो रहा है । उसे उस क्षण अनुभव हुआ जैसे उसकी रही-सही जीवनी-शक्ति भी चली गई ।

तभी रामेश्वर बोला, "इन ५-६ सालों में जितना दुःख भोगा है, उतना तुम दो जन्मों में भी नहीं भोगोगे ।

गोविन्द एक झटके के साथ कम्बल को फेंककर खड़ा हो गया । उसके भीतर अपार क्रोध और घृणा भर गई । दुःख का

ताज मानो उसका छिन गया था, शत्रु उसके सामने ताज पहिने उसकी हँसी उड़ा रहा था । वह बड़बड़ाया, "साले, दुख में भी तू मुझसे बढ़ गया । मेरे पास गर्व करने को दुःख के सिवा और क्या था ? तू उस गर्व को भी छीनना चाहता है ।"

उसने धमाधम रामेश्वर को लात मारना शुरू किया । ४-६ लात मारकर वह हाँफता हुआ बैठ गया और जोर से रोने लगा ।

रामेश्वर चुपचाप लात सहता गया । तनिक भी उसने विरोध नहीं किया ।

ऐसा प्रसन्न था जैसे उनके मुकुट में नये हीरे जड़े जा रहे हैं ।

**प्रश्न**

१—रामेश्वर और गोविन्द की दिनचर्या का वर्णन कीजिये ।

२—गोविन्द और रामेश्वर में सबसे अधिक दुःख किसने भोगा था ?

३—गोविन्द और रामेश्वर के उस तरह के जीवन बिताने का क्या कारण था ?

४—रामेश्वर और गोविन्द के व्यक्तित्व में आपको कौन-कौन से गुण अथवा दुर्गुण दिखलाई पड़ते हैं ?

---

# १२. केले, पैसे और मूँगफली

[ अमरकान्त ]

अमरकान्त की अमर लेखनी से निकली हुई यह कहानी हिन्दी कहानी साहित्य को एक जगमगाती मणि के समान बहुमूल्य है। इस कहानी में नौकरी पेशा वाले एक शिक्षित तरुण के छोटे-से परिवार की मंगलमयी झाँकी प्रस्तुत की गई है। युवक का नाम है आनन्दमोहन और उसकी पत्नी का नाम है सुमंगला। सचमुच ही इन दोनों ने अपने जीवन में आनन्द और मंगल की प्रतिष्ठा की है और वह मोहनी उत्पन्न कर दी है जो समस्त समाज को मोह लेती है।

कम तनखाह पाने के कारण महीने के अंतिम दिनों में अत्यन्त गरीब होने से आनन्दमोहन अपनी एकमात्र संतान—अपने तीन वर्षीय पुत्र—को दो केले भी नहीं खरीद सकता और बच्चे के जिद पकड़ लेने पर उसे "मार-मूर" देता है। फिर अपनी गलती पर मन ही मन वह इतना झेंपता है कि उस दिन घर में एक फूटी कौड़ी भी न रहते हुए घर से निकल पड़ता है और केले, बिस्कुट तथा मूँगफली लेकर ही शाम को वापस लौटता है। उसने कैसे अपने लिए पैसे, और फिर राजीव के लिए केले-बिस्कुट तथा सुमंगला के लिए मूँगफली खरीदी थी यही इस कहानी का सारा कथानक है। किन्तु इस कहानी का सारा श्रेय उस स्वर्गोपम वातावरण में है जिसका निर्माण सुमंगला के मधुमय दृष्टिकोण ने किया है और जिसे अपने अतिपावन, स्वच्छ और झलझलाते हुए आशामय व्यक्तित्व के अमृत-रस से उसने आद्यन्त सिंचित कर रखा है। इतनी कम पढ़ी-लिखी देहाती लड़की भी विवाह के बाद, अपने पति को अपना सर्वस्व दिव्यप्रेम देती और उसका सर्वस्व पाती हुई, घर-गृहस्थी की समस्त कठिनाइयों के काँटों पर अपनी विमल हँसी के

फूल दिन-रात चढ़ाती, अपने पति, थोड़ी-सी कमाई तथा प्रिय पुत्र के साथ किराये के छोटे से मकान में बसी अपनी दुर्बल गृहस्थी में कितना अपार जीवन-रस निचोड़ सकती है। इसको जानने के लिए यह कहानी सबको पढ़नी चाहिए। विवाहित जीवन की कल्पना से ही हर घड़ी छड़कती रहने वाली, आज की पढ़ी-लिखी लड़कियों और उनके ही समान लड़कों को एक बार सुमंगला के यथार्थ जीवन की झाँकी प्राप्त करनी चाहिए। "रोज" वाली मालती को अवश्य एक बार यह कहानी पढ़नी चाहिए।



नये वर्ष की पहली तारीख के दो दिन पूर्व आनन्दमोहन असाधारण रूप से उत्साहित हो उठा था। दिन के तीन बजे थे और उसका लड़का राजीव मार खाने के बाद रोते-रोते सो चुका था। कई दिनों की बदली के बाद आसमान साफ हो गया था, आँगन की धूप हटकर दीवाल पर चली गई थी, और पास की गली से दो लड़ती हुई औरतों की चीख-चिल्लाहट कभी-कभी सुनाई पड़ने के अलावा, मुहल्ले भर में अपेक्षाकृत शान्ति थी।

महीना बीतते-बीतते पैसा या राशन खतम होना कोई अचरज की बात नहीं। आनन्दमोहन 'राष्ट्रीय अग्रदूत' नामक स्थानीय दैनिक समाचार-पत्र में उप-संपादक के पद पर कार्य करता था और उसको नब्बे रुपया प्रतिमास वेतन मिलता था। उस दिन घर में एक पैसा नहीं था और किसी तरह उधार लेकर नमक और तरकारी खरीदने के बाद खाना बना, यह एक बात थी, पर जब भोजनोपरान्त केला बेचने वाला, "केला मलाई" कह-कहकर गली भर में फेरी लगाने लगा और राजीव केला

खरीदने के लिए जिद्द करने लगा, तो इसका कोई जवाब नहीं था। फलवाला नया था, इसलिए उससे दो पैसे का एक केला उधार मिलना कठिन था, और मिल भी जाता तो उससे कहने की न किसी में हिम्मत ही थी और न इच्छा ही। उसकी पत्नी सुमंगला ने समझाया, उसने स्वयम् दलील पेश की कि वह कम तनख्वाह पाता है, और दो दिन बाद वेतन के रुपये या कल ओवरटाइम के रुपये मिल जाने पर वह केले खरीद देगा। लेकिन लड़के के दिमाग में यह न घुसी और वह थोड़ी देर बाद जमीन पर लोटकर हाथ-पैर पटकने लगा। खामख्वाह आनन्दमोहन को गुस्सा आ गया और उसने लपक-कूदकर लड़के के माथे पर दो तमाचे जड़ दिये।

भोजन करने तथा अन्य छोटे-मोटे काम समाप्त करने के पश्चात् सुमंगला जब कमरे में आयी तो वह अखबार पढ़ रहा था। सुमंगला उसके पास आकर खड़ी हो गई और सोते हुए राजीव को एक क्षण देखने के पश्चात् मुस्कुराती हुई बोली, "इतने जोर से नहीं मारना चाहिए था। आखिर है तो बच्चा ही।"

"जी हाँ, आप जैसे मारती न हों! तुम तो इसको दिन भर मारती रहती हो, और मुझसे भी जोर-जोर से, पर जहाँ मैंने थोड़ा मार-मूर दिया, बस काल हो गया।" आनन्दमोहन ने अखबार में मुँह गाड़े ही अनमने स्वर में उत्तर दिया।

सुमंगला ने सफाई पेश की, "अब लीजिये, आपने दूसरा मतलब लगा लिया। अरे, मैं यह थोड़े कह रही हूँ कि आप मारा न कीजिये। पर आपके और मेरे मारने में फर्क है न जी?

आखिर मर्द का हाथ है, धीरे से चलता है तो भी जोर से बैठता है। स्त्री कितना ही मारे कोई बात नहीं, अब मुझे ही देखिये, जी जल उठता है तो मारना ही पड़ता है, पर कभी भी मैं उसके माथे पर नहीं मारती। फिर जिस दिन मारती हूँ दिन भर जी छटपटाता रहता है, और जब तक रात में उसके माथे और पैर में तेल नहीं लगा लेती दिल को सन्तोष नहीं होता। अरे लड़का है न जी, मुहल्ले भर के लड़कों को खाते-पीते देखता है तो जिद् कर बैठता है, नहीं तो मेरा बच्चा लाखों में एक है।" अन्त में उसकी आँखें भर आईं।

आनन्दमोहन ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह कुछ देर तक अखबार पढ़ता रहा, फिर शरीर पर से रजाई फेंककर उठ बैठा और पत्नी से पूँछ बैठा, "क्यों जी सचमुच घर में एक पैसा भी नहीं है?"

सुमंगला अब आईने के सामने बैठकर बाल गूँथने का उपक्रम कर रही थी। उसने पति की ओर चौंककर देखती हुई उत्तर दिया, "पैसा रहता तो क्या मैं देती नहीं? कभी छिपा कर कुछ रखा भी है कि आज ही रखूँगी?"

"नहीं, मेरा यह तो मतलब नहीं। हो सकता है घर में कहीं पैसे हों और हमको-तुमको मालूम न हो।" उसने मुस्कुरा कर सुमंगला की ओर तिरछी नजर से देखते हुए कहा।

सुमंगला खिलखिला कर हँस पड़ी। फिर बोली, "यह आपने खूब कही! हाँ, हो सकता है, इसी घर में कहीं किसी राजा-महाराजा का खजाना गड़ा हो, और हमको पता तक न हो।"

आनन्दमोहन भी हँसते हुए बोला, "देखो भाई, मजाक नहीं। मैं सचमुच कहता हूँ। मेरा ख्याल है, हम कोना-अँतरा, ट्रंक-सूटकेस ठीक से झाड़ साफ कर देखें तो कुछ पैसे तो मिल ही जायेंगे। तुम चाहे जो सोचो मेरा तो दिल कह रहा है। बोलो क्या कह रही हो, हाँ या नहीं?"

सुमंगला ने बात का मजा लेते हुए कहा, "ढूँढ़ लीजिए, मैं तो कहती हूँ, नहीं।"

आनन्दमोहन उठ खड़ा हुआ और पत्नी के पास पहुँचकर अपना दाहिना हाथ उसकी ओर बढ़ाते हुए बोला, "अच्छी बात है। मैं कहता हूँ, घर में पैसे हैं। इसी बात पर आओ बाजी लग जाये।"

सुमंगला ने स्नेहपूर्वक पति की ओर तिरछी नजर से देखते हुए व्यंग्य किया, "वाह, बड़े चालाक हैं! बाजी मुफ्त की लगेगी? बताइए, कितने की बाजी लगाने को तैयार हैं?"

"अच्छा, अधिक की नहीं, दस-दस रुपये की रही; आओ, हाथ मारो।" आनन्दमोहन गम्भीर था।

सुमंगला ने उसके हाथ पर अपना हाथ मारते हुए मुस्कुरा कर कहा, "आपका दिल बहुत बड़ा है जी, एकदम दस रुपये पर पहुँच गये। पर याद रखिए, अगर हार गये तो दस रुपये वसूल करके चैन लूँगी। अलग से लूँगी।"

"अच्छी बात है लेना। और हार जाओगी तो दोगी?" उसने पूछा।

"मैं क्या दे सकती हूँ, जिन्दगी भर की गुलामी लिखा लीजिएगा।" वह मुस्कुरा पड़ी।

"अच्छी बात है, पहले अपना ट्रंक खोलो," आनन्दमोहन यह कहकर कमरे के एक कोने में बढ़ गया जहाँ एक ट्रंक और सूटकेस रखे हुए थे।

सुमंगला भी बढ़कर वहाँ पहुँच गयी और नीचे बैठकर साड़ी के खूँटे में बँधी चाभी से ट्रंक खोल दिया। आनन्दमोहन झुक कर ट्रंक में से एक-एक चीज निकाल कर ढूँढ़ने लगा। साड़ी-ब्लाउज हटाकर देखा, गहने के दो डिब्बों को खोलकर देखा, आए हुए पत्रों के पुराने लिफाफों को खोलकर देखा—कहीं कुछ नहीं था। उसने सभी चीजें यथास्थान रख दीं और सीधा खड़ा होकर पत्नी की ओर देखा तो उसने अँगूठा दिखाकर चिढ़ा दिया।

उसने "कोई बात नहीं" कहकर अपना सूटकेट खोल डाला और उसकी पड़ताल करने लगा।

"इसमें क्या होगा ? सब रुपये तो आप मुझे दे देते हैं।" सुमंगला ने टोका।

"बस, चुप रहो," कहकर आनन्दमोहन अपने कार्य में व्यस्त हो गया। उसने सूटकेस की एक-एक चीज तथा एक-एक कोना खोज डाला पर कुछ हो तब तो मिले। सूटकेस को बन्द कर वह फिर खड़ा हो गया। उसके माथे पर बल पड़ गये थे और उसकी मुद्रा से लगता था कि वह कुछ सोच रहा है।

"क्या बात है ? दस रुपये देने की बात सोचकर चिन्ता में पड़ गये ?" सुमंगला ने पूछा ।

आनन्दमोहन ने उत्तर दिया, "अभी हारने की बात कहाँ आती है ? सारा घर पड़ा हुआ है । लेकिन मैं सोचता हूँ, सूटकेस में से रुपये गये तो कहाँ ? तुमने तो नहीं निकाले ?"

"कैसे रुपये, जनाब ?" सुमंगला ने चौंककर प्रश्न किया ।

आनन्दमोहन ने स्थिति पर प्रकाश डाला, अरे भाई, जब हम अहियापुर में थे न, उस समय मैंने एक बार दो रुपये अपने सूटकेस में डाल दिये थे । मुझे खूब अच्छी तरह याद है कि तब से मैंने रुपये निकाले ही नहीं, कभी याद ही नहीं पड़ा । फिर वे रुपये कहाँ उड़ गये ?"

दो वर्ष पूर्व आनन्दमोहन अहियापुर में रहता था, लेकिन वहाँ का मकान रद्दी और महँगा था, इसलिए बैरहने में अच्छा और सस्ता मकान मिलने पर छोड़ दिया और यहीं पर आकर रहने लगा ।

उसकी बात पर सुमंगला अचम्भे से लगभग चीखती हुई बोली, "वाह, वाह, आप बड़े भुलक्कड़ हैं जी । आपको याद नहीं ? हम सब सिनेमा देखना चाहते थे, पर पैसे कुछ कम पड़ रहे थे, तो आपने सूटकेस में से दो रुपये निकाले थे । आप इतनी जल्दी भूल गये, पर मुझे सब कुछ याद है । बाप रे, मैं तो डर गई थी कि पता नहीं आप किस रुपये की बात कर रहे हैं ।"

अब आनन्दमोहन को सब कुछ याद पड़ गया । रुपये उसने सचमुच निकाले थे । उसे दो वर्ष पूर्व रुपया निकालने पर आज

बड़ा अफसोस हुआ । काश, वे रुपये न निकाले गये होते तो आज कितना मजा आता !

परन्तु उसने हिम्मत नहीं हारी और पुनः उत्साहपूर्ण स्वर में बोला, "अच्छा, कोई चिन्ता की बात नहीं, अब इस पटनी को देखूंगा, इस पर जरूर कुछ न कुछ होगा।"

"अरे भाई, इस पटनी पर एक कानी कौड़ी भी न होगी, मेरा कहना मानिए।" सुमंगला ने मना किया ।

"तुम क्या जानो जी, बस चुपचाप खड़ी तमाशा देखो।"

कुछ ऊँचाई पर एक लम्बी पटनी बनी हुई थी और आनन्द-मोहन कभी-कभी मौज में आकर उस पर तीस-चालीस पैसे फेंक दिया करता था, जिससे संकटकाल में उस पर से पैसे लिए जा सकें। उसे उम्मीद थी कि कहीं-न-कहीं पर पाँच या दस पैसे अवश्य पड़े होंगे।

उसने अपनी खाट पर का बिस्तर लपेटकर बगल में पड़ी कुर्सी पर रख दिया, खाट खड़ी कर दी, और स्टूल के सहारे खाट पर चढ़कर खड़ा हो गया और ऊँट की तरह सिर उचका-उचका कर पटनी पर इधर-उधर देखने लगा। कहीं कुछ नहीं था। निराश होकर वह उतरने लगा कि उसका एक पैर चारपाई की पाटी से बिछल गया। उसने अपने को गिरने से बचाने के लिए पटनी के किनारे को पकड़ने की कोशिश की जिसमें सफल वह अवश्य हुआ, पर उसका दाहिना हाथ पटनी के किनारे से घिस कर छिल गया और खून निकल आया।

नीचे उतरा तो उसके हाथ की ओर देखकर सुमंगला चिन्तातुर स्वर में बोली, "भाड़ में जाए पैसा। आपको भी जब जिद्द सवार होती है तो किसी की नहीं सुनते। बार-बार कह रही हूँ, उस पर कुछ नहीं, कुछ नहीं है, लेकिन आप तो तुल गये थे। बेकार में लेने के देने पड़ गये न ? अच्छा ठहरिये।"

यह कहकर वह दौड़ती हुई गयी, जल्दी से हल्दी पीस लाई और खून को एक कपड़े से पोंछ कर घाव पर हल्दी लगा दी।

उसकी अनुपस्थिति में आनन्दमोहन किसी जासूस की भाँति आँखें घुमा-घुमा कर कमरे में देखता हुआ कुछ सोच रहा था, और सुमंगला जब हल्दी लगा रही थी तो वह बोला, "तुम ठीक कहती हो कि जब मुझ पर जिद्द सवार हो जाती है तो मैं किसी की नहीं सुनता। अब मुझ पर जिद्द सवार हो गई है और मैं कहीं-न-कहीं से पैसे लाकर ही छोड़ूँगा। यह अखबार कितने होंगे ?" यह कह कर उसने बगल की आलमारी की ओर इशारा किया।

सुमंगला ने उधर देखकर कहा, "यही आधा किलो होगा। बेचिएगा क्या ?"

"और क्या समझती हो ? मैं मामूली आदमी हूँ ? अभी जाकर बेच लाता हूँ।"

आनन्दमोहन को "राष्ट्रीय अग्रदूत", मुफ्त में मिलता था। इकट्ठा होने पर उनको वह बेच देता था। चौक की तरफ का एक पन्सारी कभी-कभी आता था और वह अखबार ले जाता था।

कुछ ही दिन हुए उसने अखबार बेचे थे, इसलिए अखबार इतने कम थे।

सुमंगला ने विरोध किया "अब रहने दीजिए अखबार-सखबार होगा भी क्या। दो दिन बच रहे हैं, राम-राम करके कट ही जायेंगे। फिर इतने कम अखबार, कितने पैसे आयेंगे इसके ?"

"बस रहने दो जी अपनी बहस तुम। खूब जानती हो कि क्या होगा, पर अपनी बके जा रही हो। अरे कुछ न होगा तो सिगरेट पीने को हो जायगा न? सबेरे से सिगरेट के नाम पर बीड़ी पीने को भी नहीं मिली है। बस, अब मैं नहीं रुक सकता। तुम भी क्या कहोगी कि कोई था।" अन्त में वह अस्वाभाविक रूप से हँस पड़ा।

आखिर में आधा किलो अखबारों के बण्डल को झोले में कस तथा झोले को साइकिल की हैंडिल पर लटका कर जब वह बाहर निकला, तो जहाँ वह बेहद उत्साहित और खुश था, वहीं उसके दिल में एक डर भी हुआ। पहले वह कभी भी अखबार बेचने बाहर नहीं गया था, फिर आधा किलो अखबार बेचने की तो उसने कल्पना भी नहीं की थी। कोई क्या कहेगा ? पन्सारी सोचेगा कि कोई चिरकुट आदमी है। उसका हृदय अचानक शर्म एवम् तुच्छता के भाव से भर गया। वह चाहता था कि किसी तरह बाजार पहुँच जाता और बीच में कोई जान-पहिचान का न मिलता, और गली के अन्त में पहुँचने पर जब उसी मुहल्ले में रहने वाले उसके प्रेस के कम्पोजीटर रामलाल ने अपने घर के चबूतरे पर खड़े "नमस्कार सम्पादक जी" कहा तो वह इतना

शर्माया और घबड़ाया कि फौरन साइकिल से नीचे उतर गया तथा रामलाल के घर की ओर साइकिल बढ़ाकर पूछ बैठा, "कहो भाई, क्या हाल-चाल है ?"

कम्पोजीटर भी उसके इस अप्रत्याशित शिष्टाचार से इतना प्रभावित हुआ कि चबूतरे से नीचे उतर कर हाल-चाल पूछने लगा।

आनन्दमोहन ने कम्पोजीटर से आँखें चुराते हुए स्थिति पर प्रकाश डाला, "क्या करूँ, कभी बेगारी भी करनी पड़ती है। हमारे दफ्तर के जोशी जी हैं न, उनको एक लेख लिखना है। उन्होंने अपने अखबार तो बेंच दिये हैं, लेकिन लेख लिखने के लिए उनको पन्द्रह-बीस दिन पुराने अखबार की जरूरत पड़ गई। उन्होंने मुझसे कहा था और सौभाग्य से पुराने अखबार मेरे पास थे। वही देने जा रहा हूँ। अच्छा चलूँ, देर हो रही है।"

उसने पहले ही हाथ उठाकर नमस्ते की और फिर मूर्ख की तरह मुस्कुरा कर जब साइकिल पर चढ़ गया तो अपने व्यवहार पर इतना लज्जित हुआ कि साइकिल काफी तेजी से चलाने लगा।

रास्ते भर उसे डर लगा रहा कि जान-पहिचानी बीच में रोक न लें। बहादुरगंज के पास उसे लगा कि उसका मित्र कमलेश "अरे सुनो यार!" कह कर पुकार रहा है। उसने घूम कर देखा तो उसको अत्यन्त सन्तोष हुआ, क्योंकि वह कमलेश नहीं बल्कि एक दूसरा लड़का था, जो कुछ दूर पर जाते हुए अपने किसी मित्र को बुला रहा था।

कुछ देर में वह चौक पहुँच गया। अब उसके सामने समस्या उपस्थित हुई कि आखिर अखबार बेचे जायँ तो कहाँ बेचे जायँ। वह पन्सारियों की दूकान के इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगा। पर उसकी हिम्मत न हुई। वहाँ बड़ी-बड़ी दूकानें थीं और सबके यहाँ अच्छी-खासी भीड़ लगी हुई थी। वह उनके बीच जाकर कैसे कहे कि आधा किलो अखबार ले लो! बड़ी-बड़ी दूकानें हैं, अगर दूकानदार ने लेने से इन्कार कर दिया तो? उसकी हालत चोर की-सी हो रही थी और वह डर के मारे किसी व्यक्ति की तरफ देखता तक नहीं था। उसके दिल की परेशानी बढ़ती गई और एक समय तो उसे ऐसी इच्छा होने लगी कि वह किसी ट्रक के नीचे आ जाता तो अच्छा होता। लेकिन इस भयंकर विचार के आने के फौरन बाद ही उसका हृदय एक जबरदस्त विद्रोह से भर गया। उसका कोई क्या कर लेगा? वह किसी से भिक्षा माँगने तो नहीं जा रहा है! वह अपने अखबार बेचना चाहता है। और यदि उससे एक भी पैसा मिलता है तो उसमें शर्म की कौन-सी बात है?

वह अपने हृदय से समस्त सन्देह, भय एवम् लज्जा को हटा कर एक दूकान पर एकत्रित ग्राहकों की भीड़ के पीछे खड़ा हो गया; लेकिन अभी खड़ा ही हुआ था कि पीछे से किसी ने उसकी पीठ पर हाथ मारा। उसका हृदय धक-से कर गया और उसने पीछे घूमकर देखा। उसका एक पुराना मित्र था, जिससे पिछले डेढ़-दो साल से कभी भी भेंट नहीं हुई थी। उसका नाम

वेदव्रत था और विश्वविद्यालय में वह उसके साथ पढ़ता था। अब वह वहीं टेलीफोन ऑपरेटर था।

वेदव्रत ने मुस्कुराते हुए पूछा, "कहाँ रहते हो, दोस्त ? इसी शहर में रहते हो पर मुलाकात नहीं होती। मैं जभी से तुमको देख रहा था, एक बार बुलाया भी, पर हुजूर तो कहीं दूसरी जगह गुम थे। खरीद-फरोख्त हो रही है क्या ?"

आनन्दमोहन ने अपना अता-पता बताने के बाद कहा, "अरे यार, घर-गृहस्थी का मामला, एक मिनट की फुरसत नहीं। श्रीमती जी सबेरे से ही शोर मचा रही थीं कि मसाले नहीं हैं। मैंने भी कहा, चलो भाई, पेटीकोट गवर्नमेन्ट है, काम से निबट लूँ, नहीं तो खतरा हो जायगा।" उसने जोर का ठहाका लगाया और मुँह लाल हो गया।

वेदव्रत ने भी अपनी गृहस्थी का रोना रोने तथा आनन्द-मोहन को कभी अपने घर आने का निमन्त्रण देने के पश्चात् मुस्कुराते हुए कहा, "अरे भाई, सीधे का जमाना नहीं है, आगे घुसो।"

"यार, फेहरिस्त जरा लम्बी है। सोचता हूँ, भीड़ छँटे तो जमूँ। कोई बात नहीं, तुम्हीं बढ़ो।"

वह इतने ही से नहीं माना, बल्कि वेदव्रत की पीठ पर हाथ रखकर उसको आगे ठेल दिया। वेदव्रत ने भी उसकी स्नेहपूर्ण हठ के सामने आत्मसमर्पण कर दिया और मुस्कुराता हुआ आगे बढ़ गया।

आनन्दमोहन के कान जल रहे थे, जैसे किसी ने ऐंठ दिये हों। वेदव्रत के भीड़ में गायब हो जाने से उसे अप्रत्याशित सन्तोष हुआ और कुछ देर बाद ही साइकिल घुमाकर चुपके से वहाँ से चोर की भाँति हट आया। वह दूकान से काफी दूर चला गया और तब उसे एक नया विचार सूझा। जब वह अहियापुर में रहता था तो उसके मकान से कुछ ही दूर पर एक पन्सारी की दूकान थी। उस दूकानदार में एक खास बात यह थी कि काफी शरीफ था। वह उसी के यहाँ से चीजें खरीदता और कभी-कभी उधारी भी चलती। क्यों न वहीं चले ? इस विचार से उसे बड़ी खुशी हुई, जैसे किसी ने उसे बहुत भारी संकट से उबार लिया हो। उसने आगे कुछ नहीं सोचा, बल्कि झट-से साइकिल पर चढ़कर अहियापुर के लिए रवाना हो गया।

जब वह दूकान पर पहुँचा तो दो-तीन आदमी कुछ खरीद रहे थे। वह साइकिल से उतर कर उन लोगों के जाने की प्रतीक्षा करता रहा और जब भीड़ साफ हो गयी तो वह आगे बढ़ गया।

दूकानदार ने उसको देखकर पहचान लिया और शिष्टता-पूर्वक मुस्कुराते हुए प्रश्न किया, "कहिए बाबूजी, आजकल कहाँ रहते हैं ?"

आनन्दमोहन ने सन्तोष के साथ हँसते हुए कहा, "रहता तो अब बैरहने में हूँ। कल्याणी पर एक दोस्त रहते हैं। कुछ दिन पहले एक लेख लिखने के लिए उन्होंने कुछ पिछली तारीखों के अखबार माँगे थे। आज जब उनके यहाँ गया तो उन्होंने अखबार वापस कर दिये। मैं ले तो नहीं जाना चाहता था, पर उन्होंने

कहा, ले के जाओ यार, यहीं पड़े रह कर क्या होंगे? उन्हीं दोस्त के यहाँ से आ रहा हूँ। तुम्हारी दूकान से जब गुजरा तो ख्याल आया कि क्यों नहीं अखबार यहीं बेंच दूँ। अखबार के दफ्तर में काम करने से सारे घर में अखबार छितरे पड़े हैं। अब इन अखबारों को घर ले जाने से गन्दगी और बढ़ती ही। लड़के फाड़-फूड़ कर इधर-उधर फैला-फैलू देते हैं। वैसे अखबार अधिक तो नहीं हैं, पर खैर! देखना तो ये कितने के होंगे।" वह धड़ल्ले से इतनी बात इस तरह कह गया, जैसे रट कर आया हो, और अन्त में वह अस्वाभाविक रूप से हँस पड़ा।

पन्सारी ने बिना किसी दिलचस्पी के उसके हाथ से अखबारों का झोला ले लिया और उसमें से अखबार निकाल कर तौलने लगा। कार्य समाप्त कर उसने गली की दूसरी ओर देखते हुए बताया, "अखबार तो आधा किलो से कुछ कम ही पड़ेगा, जाइए, तीस पैसे ले लीजिएगा।"

आनन्दमोहन को अत्यधिक सन्तोष हुआ कि तीस पैसे तो मिले सही, यद्यपि उसे मालूम था कि उस समय अखबार एक रुपया किलो के हिसाब से बिकते थे।

उसने हँसते हुए कहा, "ठीक है, कोई बात नहीं, पर बहुत सस्ता ले रहे हो, भाई। तीस पैसे तो बहुत कम हैं।"

"कम तो नहीं बाबूजी, आप कहीं चले जाइए, बासठ पैसे किलो से एक पैसा भी अधिक नहीं मिलेगा। अच्छा, आप पुराने ग्राहक हैं, पाँच पैसे और ले लीजिएगा।"

आनन्दमोहन ने खुशी-खुशी मान लिया और पैंतीस पैसे लेकर वहाँ से चलता बना। वह बड़ा प्रसन्न था। अब साइकिल पर चढ़ कर गुनगुनाता हुआ चौक की तरफ जा रहा था। पैंतीस पैसे जेब में रहने से उसे बड़ा सन्तोष था और उसके हृदय में एक ऐसा उत्साह था जो समा नहीं पा रहा था। वह लड़के के लिए कुछ-न-कुछ खरीद सकता था और दूकान से सिगरेट ले कर कश लगा सकता था। अन्त में उसकी प्रसन्नता इस हद तक पहुँची कि उसकी इच्छा करने लगी कि उसकी साइकिल पंचर हो जाए और वह बारह पैसे में किसी दूकान से पंचर बनवा ले।

चौक पहुँच कर उसने उन्नीस पैसे के आधा दर्जन केले और बिस्कुट की दूकान से छः पैसे के कुछ छोटे-छोटे बिस्कुट खरीदे तथा पान की दूकान पर जाकर पाँच पैसे की दो कैंची सिगरेटें लीं। एक सिगरेट तो वहीं सुलगा ली और दूसरी जेब के हवाले की। अब उसके पास दो पैसे बच रहे थे और उसने उसको कोट की भीतरी जेब में सम्हाल कर रख लिया कि कभी सिगरेट की इच्छा होगी तो खरीद कर पीएगा। लेकिन कुछ दूर आगे बढ़ने पर उसे ख्याल आया कि उसकी पत्नी को मूँगफली बेहद पसन्द है। उसे अफसोस होने लगा कि उसने दो पैसे और क्यों नहीं बचा लिए जिससे वह पाँच पैसे की मूँगफली खरीद सकता। दो पैसे की दस-बारह मूँगफलियाँ मिलेंगी और अचानक एक विचार से उसका दिल जबरदस्त खुशी से भर गया और उसे गुदगुदी-सी होने लगी। वह मन-ही-मन हँस पड़ा। अब वह एक ऐसे खोमचे वाले की तलाश करने लगा, जो गरीब और बेचारा मालूम

पड़े और जिसके यहाँ कोई ग्राहक न हो। कुछ दूर जाने पर उसकी इच्छा पूरी भी हुई और एक पेड़ के नीचे एक आदर्श खोमचे वाले को देख कर उतर पड़ा और उससे दो पैसे की मूँगफली ले ली। मूँगफलियाँ मुट्ठी में फैलाकर उसने देखीं फिर उनको जेब में रखकर मन्द-मन्द मुस्कुरा पड़ा।

जब वह घर पहुँचा तो शाम हो चली थी और उसकी पत्नी बाहर के दरवाजे पर खड़ी सिर उचका-उचका कर गली की ओर उत्सुकतापूर्वक निहार रही थी। वह पति को देखकर खुश हो गयी और अन्दर चली गयी।

आनन्दमोहन चुपचाप अपनी साइकिल चढ़ाकर जब भीतर के कमरे में पहुँचा तो राजीव जमीन पर बैठा दिन का बचा दाल-भात खा रहा था। उसने साइकिल आँगन में खड़ी कर दी और फिर कमरे में जाकर झोले में से केले निकाल कर राजीव को दिखलाते हुए मुस्कुरा कर पूछा, "कहो भाई, कितने केले लोगे?"

लड़के की आँखें आधा दर्जन केले देखकर चमक उठीं। उसने उत्तर दिया, "दो लूँगा।"

"अच्छा भाई, तुम सभी ले लो और यह बिस्कुट भी ले लो।"

उसने यह कहकर बिस्कुट का पैकेट भी निकाल कर दिखलाया। राजीव खाना छोड़कर उठ खड़ा हुआ तो सुमंगला ने उसे मना करते हुए कहा कि वह पूरा खाना खा ले और तब केले और बिस्कुट ले। बात लड़के की समझ में आ गयी और उसने कहना मान लिया।

अब दोनों पति-पत्नी एक दूसरे की ओर देखकर हँस पड़े, एक ऐसी हँसी जैसे वह जानते हों कि ऐसी स्थिति में उनको हँसना ही चाहिए और अब काफी मजाक हो चुका है।

आनन्दमोहन ने जान-बूझ कर छेड़ा, "आखिर मेरी जीत हुई न। पैसे लाकर ही मैंने चैन लिया अब नहीं कहोगी न।"

सुमंगला हँसती हुई बोली, "हाँ भाई, हैं तो आप पूरे ! पर आपकी जीत कैसे हुई ? मैं इस तरह नहीं छोड़ूँगी ? घर में तो पैसे नहीं मिले न ? दस रुपये वसूल करूँगी आपसे, यह समझ लीजिए।"

"अच्छा, दस रुपये लोगी न कि जान खाओगी। अभी लो। पहले से इन्तजाम करके लाया हूँ।" उसने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"लाइये", कहकर सुमंगला ने अपना दाहिना हाथ फैला दिया। आनन्दमोहन जेब में हाथ डाल कर दो पैसे की खरीदी मूँगफली में से भीतर ही भीतर पूरी दस लेकर सुमंगला के हाथ पर रखते हुए बोला, "लो अपने दस रुपये। गिन लो पूरे दस हैं।" इतना कहकर वह जोर से हँस पड़ा। सुमंगला ने मुस्कुराते हुए स्नेह से एक क्षण अपने पति की आँखों में देखा, और फिर एक मूँगफली को जोकर की भाँति मुँह करके दाँत से फोड़कर बोली, "हाँ जी, ये दस रुपये की नहीं, मेरे लिए तो दस हजार रुपये की हैं।"

## प्रश्न

१—आनन्दमोहन ने पैसे प्राप्त करने के लिए इतना हठ क्यों पकड़ लिया था ?

२—इतना अधिक स्नेह रखने वाली अपनी पत्नी के प्रति उस दिन की आनन्दमोहन की रुखाई कहाँ तक उचित थी ?

३—सुमंगला के व्यक्तित्व का वर्णन कीजिए ।

४—'रोज' की मालती की सुमंगला के व्यक्तित्व के साथ तुलना कीजिए ।